शोध सरोवर पत्रिका

आरती, वषुतक्काटु, तिरुवनंतपुरम-695 014, केरल राज्य।

RNI No. KERHIN/2017/70008 ISSN No.2456-625 X

वर्ष 8 अंक 34 | **त्रैमासिक हिन्दी शोध पत्रिका** 10 अप्रैल, 2025

पीयर रिव्यू समिति :

प्रो.(डॉ.) शांति नायर

प्रो (डॉ.) के श्रीलता

प्रो.(डॉ.) बी.अशोक

मुख्य संपादक
डॉ.पी.लता

प्रबंध संपादक
डॉ.एस.तंकमणि अम्मा

सह संपादक
प्रो.सती के
डॉ.एस.लीलाकुमारी अम्मा
श्रीमती वनजा पी

संपादक मंडल
डॉ.बिन्दु सी.आर
डॉ.षीना यू.एस
डॉ.सुमा आई
डॉ.एलिसबत जोर्ज
डॉ.लक्ष्मी एस.एस
डॉ.धन्या एल
डॉ.कमलानाथ एन.एम
डॉ.अश्वती जी.आर

इस अंक में

संपादकीय

हरिशंकर परसाई - राजनीतिक व्यंग्य के पुरोधा : डॉ.बिनु डी 5

संवेदना और यथार्थ के सहज सम्मिश्रण की कविता : डॉ. गिरीश कुमार के के 10

पंजाब में हिन्दी-दशा, दिशा एवं चुनौतियाँ : डॉ. पवन कुमार शर्मा 14

आंचलिकता के परिप्रेक्ष्य में 'आधा गाँव' उपन्यास का विश्लेषणात्मक अध्ययन : डॉ.बिन्दु एम जी 18

दलित विमर्श-एक विचार : डॉ. देवप्रकाश मिश्रा 20

प्राचीन भारत में श्रेणी व्यवस्था: स्वरूप तथा दायित्व: संतोष कुमार पाण्डेय 22

भारत में महिलाओं के मानवाधिकार और लैंगिक समानता का विश्लेषण : करुणा गौतम, प्रो.(डॉ.) संगीता माथुर 26

मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों में वर्णित किसानों की समस्याएँ : निवेदिता पाराशर, डॉ.सोनिया यादव 30

मणिपुर, मिज़ोरम और त्रिपुरा की सांस्कृतिक परंपराएँ और बदलती जीवन-शैली : बिभूति बिक्रमनाथ 35

'जीती बाजी की हार' कहानी में अभिव्यक्त पारिवारिक व सांस्कृतिक मूल्य : स्निग्धा सिंह 39

भूमंडलीकरण और 21वीं सदी के हिंदी उपन्यास (स्त्री-लेखन के विशेष सन्दर्भ में) : नेहा साव 43

आर्थिक संकट की त्रासदी की कसौटी पर चित्रा मुदगल की कहानी 'भूख' : डॉ. सौम्या सी.एस. 48

यू जी सी से अनुमोदित पत्रिका

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मैलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ हिंदी यूनिकोड मंगल फॉन्ट में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 'की वर्ड' (बीज शब्द) भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2500 से 3000 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे।

रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें। संक्षिप्त जीवन-परिचय और फोटो भी भेजें।

डॉ.पी.लता
संपादक
शोध सरोवर पत्रिका

मूल्य : एक प्रति रु.100/-

वार्षिक शुल्क रु.400/-

पत्रिका के संबंध में अधिक जानकारी केलिए संपर्क करें - डॉ.पी.लता (संपादक, शोध सरोवर पत्रिका; मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी), आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफीस लेन, ई-28, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

फोन : 9946679280,9946253648

ई-मेल : akhilbharatheeyhindiacademy@gmail.com

संपादकीय

'एम टी' पद्म विभूषण से विभूषित हुए

विख्यात और बहुचर्चित मलयालम कथाकार स्वर्गीय श्री एम टी वासुदेवन नायर का जन्म 15 जुलाई 1933 को कूटल्लूर गाँव (पोन्नानी तालुक, पालक्काटु जिला, केरल राज्य) में हुआ। माता माटत्तु तेक्केप्पाट्टु अम्मालु अम्मा और पिता टी नारायणन नायर। आप माता-पिता की चार संतानों में सबसे छोटे थे। आपने कुमारनेल्लूर हाईस्कूल में स्कूली शिक्षा के बाद विक्टोरिया कॉलेज (पालक्काटु जिला, केरल राज्य) से सन् 1953 में रसायन शास्त्र में स्नातक उपाधि प्राप्त की। पूरा नाम है 'माटत्तु तेक्केप्पाट्टु वासुदेवन नायर।' वे 'एम टी' नाम से जाने जाते हैं, जो माता के खानदान 'माटत्तु तेक्केप्पाट्टु' का संक्षिप्त रूप है।

अध्यापन, पत्रकारिता, साहित्य-लेखन, पटकथा-लेखन, फिल्म-निर्देशन जैसे विभिन्न क्षेत्रों में आपने सफलतापूर्वक काम किया। मलयालम साहित्य और सिनेमा के क्षेत्रों में आपने अमिट छाप छोड़ी। आपने 45 फिल्मों को पटकथाएँ लिखीं और 7 फिल्मों का निर्देशन किया। विविध साहित्य विधाओं में आपकी रचनाएँ प्रकाशित हैं- 'पातिरावुं पकल वेलिच्चवुं' (1957), 'नालुकेट्टु' (1958), 'अरबिपोन्नु' (एन पी मुहम्मद के साथ सहलेखन, 1960), 'असुरवित्तु' (1962), 'मञ्ञु' (1964), 'कालम्' (1969), 'विलाप यात्रा' (1978), 'रण्टामूष़म्' (1984), 'वाराणसी' (2002) आदि उपन्यास हैं। 'रक्तं पुरण्ट मण् तरिकल' (1953), 'वेयिलुं निलावुं' (1954), 'वेदनयुटे पूक्कल' (1955), 'निन्टे ओर्मक्कु' (1956), 'ओलवुं तीरवुं' (1957), 'इरुट्टिन्टे आत्मावु' (1957), 'कुट्टियेटत्ती' (1964), 'नष्टप्पेट्ट दिनङ्ङल' (1960), 'बन्धनं' (1963), 'पतनं' (1965), 'कलिवीटु' (1966), 'वारिक्कुष़ी' (1967), 'तेरञ्ञेटुत्त कथकल' (1968), 'दार-एस सलाम' (1978), 'अज्ञातन्टे उयरात्त स्मारकं' (1973), 'अभयं तेटी वीण्टुं' (1978), 'स्वर्गं तुरक्कुन्न समयं' (1980), 'वानप्रस्थं' (1992), 'शेरलॉक' (1998) आदि कहानी संकलन हैं। आप से लिखी प्रसिद्ध पटकथाएँ हैं- 'मुरप्पेण्णु' (1966), 'इरुट्टिन्टे आत्मावु' (1969), 'निष़लाट्टं' (1970), 'ओलवुं तीरवुं' (1971), 'वैशाली' (1989), 'ओरु वटक्कन वीरगाथा' (1989), 'पंचाग्नि' (1992), 'पेरुन्तच्चन' (1992), 'नखक्षतङ्ङल' (1994), 'सुकृतं' (1996), 'अटियोष़ुक्कुकल' (1999) आदि। 'मनुष्यर निष़लुकल' (1966), 'आलकूट्टत्तिल तनिये' (1972), 'वन् कटलिले तुष़वल्लक्कार' (1998) आदि यात्रावृत्त हैं। 'माणिक्य कल्लु' (1961), 'दया एन्न पेण्कुट्टी' (1987), 'तंत्रक्कारी' (1993) आदि बाल साहित्य रचनाएँ हैं। 'गोपुर नटयिल' (1977) नाटक है। विभिन्न क्षेत्रों के व्यक्तियों की ईश्वर के सामने विनतियों को विषय बनाकर कोषिक्कोटु के संगमं थिऐटर्स केलिए उन्होंने यह नाटक लिखा और खुद निर्देशन भी किया। आपकी कई रचनाएँ अन्य भाषाओं में अनूदित हुई हैं, जैसे- 'नालुकेट्टु' और 'पंचाग्नि' कन्नट, हिंदी, उर्दू, उड़िया, गुजराती आदि भाषाओं में; 'कालं', 'मञ्ञु', नालुकेट्टु आदि हिंदी और अंग्रेज़ी में; आलकूटट्टित्तल तनिये, इरुट्टिन्टे आत्मावु आदि अंग्रेज़ी में। 'काथिकन्टे पणिप्पुरा' (1963), 'हेमिङ्वे ओरु मुखवुरा' (1964) 'काथिकन्टे कला' (1984), 'किलिवातिलिलूटे' (1992), 'एकाकियुटे शब्दं' (1997), 'रमणीयं ओरु कालं', 'वाक्कुकलुटे विस्मयं' आदि निबन्ध हैं। सामाजिक समस्याओं का चित्रण करनेवाली एम टी की कथा रचनाएँ कालजयी हैं। एम टी के बहुचर्चित उपन्यासों में एक है 'मञ्ञु',

जिसका कथा स्थान है नैनीत्ताल। सन् 1983 में उन्होंने इसका फिल्मीकरण भी किया। अपने 'वलर्त्तु मृगङ्ङल' उपन्यास का फिल्मीकरण हुआ तो एम टी ने खुद उसके सभी गानों की रचनाएँ कीं।

एम टी 18 साल तक कूटल्लूर गाँव में रहे, फिर पालक्काटु और कोषिक्कोटु में भी। कूटल्लूर गाँव से नयी जगहों में जाकर रहते वक्त भी उन्होंने मन से अपने गाँव को नहीं छोड़ा था। पालक्काटु विक्टोरिया कॉलेज में पढ़कर आप स्नातक उपाधि प्राप्त करने के बाद सन् 1954 में पहले पट्टाम्पी बोर्ड हाईस्कूल में, फिर चावक्काटु बोर्ड हाई स्कूल में अध्यापक बने। इसके बाद 1955-56 वर्ष में पालक्काटु के एम-बी टूटोरियल कॉलेज में अध्यापक बने। वहीं प्रमीला नायर भी अध्यापिका थी, जो उनकी जीवन संगिनी भी बनी। उस कॉलेज के मालिक से प्रकाशित हो रही मासिक पत्रिका 'मलयाली' में लिखना भी शुरू किया। उनका पहला उपन्यास 'पातिरावुं पकल वेलिच्चवुं', इस पत्रिका में प्रकाशित हुआ। फिर कुछ दिनों ब्लोक डेवेलपमेंट ऑफीस में ग्राम सेवक का काम करने के बाद सन् 1956 में 'मातृभूमि' साप्ताहिक में सह संपादक और सन् 1968 में संपादक बने। सन् 1981 में सेवानिवृत्त होने के बाद साहित्य-सृजन में पूरा ध्यान दिया। सन् 1988 में 'मातृभूमि' के प्रकाशनों के संयुक्त संपादक के प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त हुए।

सन् 1950 में 'चित्र केरलं' मासिक में 'विषुवाघोषं' कहानी प्रकाशित होने के साथ उनकी अक्षरयात्रा शुरू हुई थी। सन् 1954 में अंतर्राष्ट्रीय मलयालम कहानी प्रतियोगिता में उनकी 'वलर्तु मृगङ्ङल' (पालतू जानवर) कहानी को प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। सन् 1959 में 26 वर्ष की आयु में पुस्तक रूप में प्रकाशित पहले उपन्यास 'नालुकेट्टु' को 'केरल साहित्य अकादमी पुरस्कार' प्राप्ति से लेकर आप फिल्म और साहित्य के क्षेत्रों में कई राज्य स्तरीय और राष्ट्रीय पुरस्कारों से विभूषित हुए। 'निर्माल्यं' के लेखक, पटकथाकार और फिल्म निर्देशक एम टी ही थे। निर्देशक के तौर पर उनकी पहली फिल्म है 'निर्माल्यं', जिसे सन् 1974 में सर्वश्रेष्ठ फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुआ। उन्हें सर्वश्रेष्ठ पटकथा लेखन को चार बार राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार प्राप्त हुए। 'रण्टामूष़ं' उपन्यास वयलार पुरस्कार और मुट्टत्तुवर्की फाउण्टेशन पुरस्कार से सम्मानित हुआ। 'नालुकेट्टु', 'स्वर्गं तुरक्कुन्न समयं', 'गोपुर नटयिल' आदि रचनाओं को 'केरल साहित्य अकादमी पुरस्कार', 'वानप्रस्थं' को 'ओटक्कुष़ल पुरस्कार', 'कालं' को 'केन्द्र साहित्य अकादमी पुरस्कार' आदि प्राप्त हुए। एम टी को 22 जून 1996 को कालिकट विश्वविद्यालय का ओणररी डी.लिट प्राप्त हुआ था। सन् 2005 को केरल साहित्य अकादमी की विशिष्ट सदस्यता प्राप्त हुई। सन् 2013 में केंन्द्र साहित्य अकादमी फेलोशिप प्राप्त हुआ। फिल्म क्षेत्र को समग्र देन के उपलक्ष्य में 'जे सी डानियल' पुरस्कार (2013) प्राप्त हुआ। केरल सरकार का सर्वोच्च पुरस्कार 'केरल ज्योति' सन् 2022 में प्राप्त हुआ।

एम टी सन् 1995 को 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से सम्मानित हुए। ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता मलयालम साहित्यकारों की सूची इस प्रकार है- जी. शंकर कुरुप (पहला ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता, 1965; सन् 1950 में प्रकाशित 'ओटक्कुष़ल' काव्य को), एस के पोट्टक्काटु (1980), तकषि शिवशंकर पिल्लै (1984), एम टी वासुदेवन नायर (1995), ओ एन वी कुरुप (2007), अक्कित्तम अच्युतन नंपूतिरि (2019) आदि।

एम टी वासुदेवन नायर पद्म भूषण, पद्म विभूषण जैसे भारत सरकार द्वारा दिये जानेवाले सर्वोच्च नागरिक सम्मानों से भी विभूषित हुए। 'पद्म पुरस्कारों' की घोषणा हर साल गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर की जाती है। भारत का सर्वेच्च नागरिक सम्मान है 'भारत रत्न', जो 'पद्म पुरस्कारों' से अलग होता है। पद्म पुरस्कारों के अंतर्गत 'पद्म विभूषण', 'पद्म भूषण' और 'पद्मश्री' आते हैं। इनमें 'भारत रत्न' के बाद देश का सर्वोच्च नागरिक सम्मान है 'पद्म

विभूषण', जो विशिष्ट क्षेत्र में असाधारण एवं विशिष्ट सेवा के लिए दिया जाता है। 'पद्म भूषण' देश का तीसरा सर्वोच्च नागरिक सम्मान है, जो उच्च कोटि की विशिष्ट सेवा के लिए दिया जाता है।

कई राज्य स्तरीय और राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित मलयालम के दिग्गज लेखक श्री एम टी वासुदेवन नायर कोषिक्कोटु जिले के कोट्टारम् रोड में स्थित सित्तारा नामक अपने घर में दूसरी पत्नी कलामंडलम् सरस्वती (विख्यात नर्तकी) के साथ रहते थे। उनके बेटियाँ हैं- सितारा और अश्वती। उनका निधन 25 दिसंबर 2024 को 91 वर्ष की आयु में 'बेबी मेमोरियल अस्पताल' (कोषिक्कोटु) में हुआ। मरणोपरांत 25 जनवरी 2025 को साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान को, वे 'पद्म विभूषण' से विभूषित होने की सरकारी घोषणा की गयी। एम टी सन् 2005 को 'पद्म भूषण' से भी सम्मानित हुए थे। मलयालम साहित्य के अतुलनीय, अनश्वर कथाकार स्वर्गीय श्री एम टी वासुदेवन नायर को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ।

डॉ.पी.लता

संपादक, शोध सरोवर पत्रिका

(मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी)।

हरिशंकर परसाई-राजनीतिक व्यंग्य के पुरोधा

◆डॉ.बिनु डी

शोधसार- परसाई की अधिकांश कहानियाँ भारतीय राजनीति के अंतर्विरोधों एवं विसंगतियों को दर्शाती हैं। आज़ादी के बाद भारतीय राजनीति में आई मूल्यहीनता चिंताजनक थी। आज़ादी से पहले लोग देश-सेवा करने के लिए राजनीति में आते थे। राजनीति में परिवारवाद, अवसरवाद, जातिवाद, भाई-भतीजावाद, सत्तावाद आदि को कोई स्थान नहीं था। सत्ता का स्वाद राजनीति पर गहरा प्रभाव डालता है। हिंदी साहित्य के मशहूर लेखक हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य के माध्यम से स्वतंत्रता के बाद के भारत के सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य का विश्लेषण किया है। इस लेख का उद्देश्य परसाई के व्यंग्य साहित्य में अभिव्यक्त राजनीतिक विसंगतियों को खोजना है।

बीज शब्द- व्यंग्य,राजनीतिक व्यवस्था, भ्रष्टाचार, समाजवाद, प्रजावाद आदि।

शोध विस्तार- हरिशंकर परसाई जी हिंदी के व्यंग्य सम्राट के रूप में प्रसिद्ध हैं।शब्द की व्यंजना शक्ति का प्रयोग अनेक लेखकों ने किया है।लेकिन व्यंजना को एक विधा के रूप में रूपायित करने का श्रेय श्री हरिशंकर परसाई को जाता है। उन्होंने व्यंग्य को सामाजिक सुधार का शस्त्र बना दिया। उन्होंने घर,परिवार समाज और राजनीति में व्याप्त विसंगतियों के विरोध के लिए व्यंग्य का आश्रय लिया। उनके प्रसिद्ध व्यंग्य लेख संग्रह `विकलांग श्रद्धा का दौर' पर उन्हें सन 1982 में 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' मिला। हरिशंकर परसाई ने अपने व्यंग्य के द्वारा तत्कालीन समाज-व्यवस्था और सत्ता पर भी करारी चोट पहुँचा दी। समाज को प्रेरित करने के उद्देश्य से परसाई ने अपनी लेखनी का प्रयोग किया है।

हरिशंकर परसाई जी ने `भोलाराम का जीव' कहानी में व्यंग्य को आधार बनाकर व्यवस्था का विरोध किया है। परसाई की रचना भले दशकों पुरानी लगती हो, किन्तु इसे पढ़कर लगता है कि यह वर्तमान पर सटीक व्यंग्य करती है। भोलाराम के जीव ने पाँच दिन पहले देह त्यागी। लेकिन जीव यमलोक में नहीं पहुँचा। धर्मराज कारण पूछते हैं तो चित्रगुप्त ने कहा- "महाराज आजकल पृथ्वी पर इस प्रकार का व्यापार बहुत चला है। लोग दोस्तों को कुछ चीज़ भेजते हैं और रास्ते में ही रेलवे वाले उड़ा लेते हैं। होजरी के पार्सलों के मोजे रेलवे अफसर पहनते हैं। मालगाड़ी के डब्बे के

डिब्बे रास्ते में कट जाते हैं। एक बात और हो रही है, राजनीतिक दलों के नेता विरोधी नेताओं को उड़ाकर कहीं बंद कर देते हैं। कहीं भोलाराम के जीव को भी किसी विरोधी ने मरने के बाद भी खराबी करने के लिए तो उड़ा दिया?"(1) परसाई जी ने स्वतंत्रता के बाद की हमारी सामाजिक अराजकता को पौराणिक पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया है। सभी लोग उन्नति के सपने देख रहे थे। लेकिन राजनीतिक दल तथा नेता भी लोगों की उमंग को पूरा करने में असमर्थ बन गए। इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था हरगिज़ आम लोगों के लिए हितकर नहीं है। इसलिए लेखक ने इसके विरुद्ध कड़ा विरोध खड़ा कर दिया है।

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय राजनीति जाति-प्रधान हो गयी। उम्मीदवार को उसकी प्रतिभा, सेवा और समर्पण के आधार पर चुन नहीं लिया जाता है। भगवान कृष्ण को नायक बनाकर, परसाई जी ने 'हम बिहार में चुनाव लड़ रहे हैं' में चुनाव में जाति-प्रभाव का पर्दाफाश किया है। भगवान कृष्ण, बिहार में चुनाव लड़ना चाहते हैं, किन्तु किसी जाति विशेष का न होने के कारण, उनकी जीत की संभावना कम है- "कृष्ण ने कहा- मैं ईश्वर हूँ, मेरी कोई जाति नहीं है।

उन्होंने कहा- देखिए इधर भगवान होने से कोई काम नहीं चलेगा। आपको कोई वोट नहीं देगा। जात नहीं रखिएगा तो कैसे जीतिएगा? "(2)

नेता जाति-व्यवस्था को देश के विकास के लिए हानिकारक बताते हैं,लेकिन वे जाति के आधार पर चुनाव लड़ते हैं। नेता ही नहीं,मतदाता भी अपने जाति वालों से मिले रहते हैं। मंदिर का कृष्णभक्त पुजारी तक भगवान कृष्ण को अपना वोट देने को तैयार नहीं होता- "पुजारी ने हाथ मलते हुए कहा- आप मेरे आराध्य हैं, पर वोट का ऐसा है कि वह तो जात वाले को ही जाएगा। जात से कोई खड़ा न होता तो हम ज़रूर आपको ही वोट देते। "(3)

राजनीति आज सारी मर्यादाएँ खो चुकी है। वह अपना पक्ष मज़बूत रखने के लिए किसी भी प्रकार का पतित कार्य करने के लिए तैयार है। इस बीच में सचरित्रवान व्यक्ति भी चरित्रहीन लगने लग जाता है।

परसाई जी ने मिथकों के सहारे राजनीति की सभी विषयों पर अपनी टिप्पणी की है। लेखक लोग सत्तासीनों के आसपास भटकते तथा कलम से उनकी प्रशंसा करते देखे जाते हैं, लेकिन परसाई जी ने समस्त अधिकारों से बराबर दूरी बनाकर नेताओं की दिल्लगी उड़ाई। उनकी रचनाएँ इस बात की पुष्टि करती हैं। हमारे देश की राजनीति में जब अनपढ़ और अशिक्षित नेताओं की संख्या बढ़ी है, वक्ताओं का घटियापन सामने आने लगा है। 'पहला पुल' नामक रचना में राजा जनक ऐसे ही नेता के चरित्र का प्रतिनिधित्व करता है। वह पुल के उद्घाटन भाषण में कहता है- "भाइयो, रामचंद्र ने मुझे इस पुल के उद्घाटन करने के लिए बुलाकर जो मेरा सम्मान किया है, उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। उन्होंने मुझे बुलाकर उचित ही किया, क्योंकि आखिर वे मेरे दामाद हैं। वे और किसे बुलाते? भाइयो, राष्ट्र के जीवन में पुल का क्या महत्व है, ये किसी से नहीं छिपा है। आज अपने देश का हमें निर्माण करना है और निर्माण तब तक नहीं हो सकता, जब तक हमारे पास बड़ी संख्या में पुल न हो। पुल ही राष्ट्र की पूँजी है और पुलों के बिना कोई राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता। संसार का इतिहास उठाकर देखो,वही राष्ट्र उन्नति कर सका जिसके पास पुल थे। इसलिए मैं तो कहता हूँ कि हमारे देश में पुल पर पुल बने। समस्त देश को पुल से पाट दो। भूमि पर पुल बने। नदियों पर पुल बने। सागरों पर पुल बने महासागरों पर पुल बने। यही नहीं हवा में पुल बने, जैसे हवा में महल बनते हैं। इस महान पुल निर्माण की श्रृंखला में यह पुल पहली कड़ी है। मैं आप लोगों को पुनः धन्यवाद देता हूँ।"(4) आज भी नेता लोग पुल बनाते हैं और उससे रिश्वत लेकर अपनी संपत्ति बढ़ा देते हैं। जनतंत्र में जनता के पैसे से विकास के नाम पर जो-जो कार्य करते हैं वे उसे अपने यश के साधन बना देते हैं।

'सदाचार का तावीज़' हरिशंकर परसाई द्वारा रचित एक व्यंग्य रचना है, जिसमें लेखक ने देश में व्याप्त भ्रष्टाचार का चित्रण किया है। एक राज्य में भ्रष्टाचार का बोलबाला था, प्रजा त्रस्त थी। बात राजा तक पहुँची है। उसने अपने दरबारियों से कहा कि मैंने तो भ्रष्टाचार देखा ही नहीं। तुममें से किसी को वह दिखे तो नमूने के रूप में थोड़ा-सा मेरे पास भी ले आना। चाटुकार दरबारियों ने कहा कि भ्रष्टाचार बारीक चीज़ है; आपकी विराटता देखते-देखते आँखें अब बारीक चीजें नहीं देख पातीं। आखिरकार विशेषज्ञों को बुलाया गया। उन्होंने खोजबीन करके बताया कि भ्रष्टाचार सर्वत्र है, राजा के सिंहासन में भी है। परेशान राजा उछलकर खड़ा हो गया। उसने इलाज पूछा। विशेषज्ञों ने कहा कि भ्रष्टाचार क्यों होता है, कैसे होता है, इसे जानना और भ्रष्टाचार के मौके खत्म करना जरूरी है।छोटे और बड़े, सबके बीच भ्रष्टाचार के दो प्रमुख कारण हैं- मुनाफा और तंगहाली। राजा ने विशेषज्ञ जाति के पाँच आदमियों को भ्रष्टाचार ढूँढने का काम सौंप दिया। राजा ने पूछा तो उत्तर दिया-

"जी, सरकार।"

"क्या तुम्हें भ्रष्टाचार मिला?"

"जी, बहुत सा मिला।"

राजा ने हाथ बढ़ाया- "लाओ, मुझे दिखाओ। देखूँ, कैसा होता है।"

विशेषज्ञों ने कहा- "हुज़ूर वह हाथ की पकड़ में नहीं आता। वह स्थूल नहीं, सूक्ष्म है, अगोचर है। पर वह सर्वत्र व्याप्त है। उसे देखा नहीं जा सकता, अनुभव किया जा सकता है।"

राजा सोच में पड़ गये। बोले- "विशेषज्ञो, तुम कहते हो कि वह सूक्ष्म है, अगोचर है और सर्वव्यापी है। ये गुण तो ईश्वर के हैं। तो क्या भ्रष्टाचार ईश्वर है?"

विशेषज्ञों ने कहा- "हाँ, महाराज, अब भ्रष्टाचार ईश्वर हो गया है।"(5)

परसाई जी एक सजग कलाकार हैं। वे सब कहीं व्याप्त भ्रष्टाचार को देखे बिना नहीं रह सकते थे। वे समाज की आवश्यकताओं को समझते हैं। वे निर्भीक हैं, क्योंकि शासन की बुराइयों का अन्वेषण करने तथा विरोध करने में ज़रा भी संकोच नहीं करते हैं।

भारतीय समाज और राजनीति की जटिलताओं को समझने में परसाई जी के व्यंग्य सहायक हैं। उनके व्यंग्य स्वतंत्रता के बाद के भारत में साहित्य,समाज और राजनीति के बीच के व्यापक संबंधों को समझने में मदद करते हैं। 'ढिढुरता हुआ गणतंत्र' नामक रचना में परसाई जी नेताओं की स्वार्थवृत्ति पर व्यंग्य करते हैं। इतना ही नहीं, आज की राजनैतिक स्थिति,नेताओं के द्वारा दिए गए झूठे वादे और गणतंत्र दिवस पर होनेवाले झूठे दिखावे और समाजवाद की दुहाई देनेवाले राजनीतिक दल व नेताओं की तथा लाल फीताशाही पर खूब दिल्लगी उड़ाते हैं। लेखक कहते हैं- "स्वतंत्रता दिवस भीगता है और गणतंत्र दिवस ढिढुरता है। प्रधानमंत्री किसी विदेशी मेहमान के साथ खुली गाड़ी में निकलते हैं। रेडियो टिपणीकार कहता है। घोर करतल ध्वनि हो रही है, लेकिन हम नहीं बजा रहे हैं, फिर भी तालियाँ बज रही हैं। मैदान में ज़मीन पर बैठे वे लोग बजा रहे हैं, जिनके पास हाथ गरमाने के लिए कोट नही है। लगता है, गणतन्त्र ढिढुरते हुए हाथों की तालियों पर टिका है। गणतन्त्र को उन्हीं हाथों की ताली मिलती है, जिनके मालिक के पास हाथों को छिपाने के लिए गर्म कपड़ा नहीं है। हर साल घोषणा की जाती है कि समाजवाद आ रहा है। पर अभी तक नहीं आया। कहाँ अटक गया? लगभग सभी दल समाजवाद लाने का दावा करते है, लेकिन वह नहीं आ रहा।"[6] परसाई समकालीन राजनीतिक परिदृश्य में त्यागी और चरित्रवान राजनेताओं की जगह देश-सेवा का ढोंग करने वाले नकली जनसेवकों का, एक नए वर्ग का चित्र पेश करते हैं।

भारत 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र हो गया। लेकिन इस स्वतंत्रता का सच्चा अर्थ क्या है?

आम जनता को सचमुच स्वतंत्रता और स्वराज्य का कोई लाभ मिला है? 'पर राजा भूखा था' लघु कथा के माध्यम से परसाई ने आम जनता की समस्याओं को चित्रित किया है - "यदि कोई पूछे कि स्वराज्य किसका? तो हम सब कहेंगे- किसान का, मज़दूर का, ग्रामीण का। परन्तु क्या वास्तव में वह जानता है कि उसे राज्य मिल गया है; वह राजा हो गया है? उसकी राजनीति, साहित्य, संस्कृति, कला- पेट के बाहर कहीं भी नहीं है। स्वतंत्रता दिवस को उसके पास दीप है तो तेल कहाँ से लावे? फिर भी वह माँ की स्वतंत्रता का स्वागत करता है। भूख की ज्वाला उसके पेट में निरंतर जलती है; अन्याय, शोषण की लपटें उसके आस-पास उठ ही रही हैं- और इनके बीच वह स्वयं बत्ती बनकर जल रहा है।"[7] भारत की स्वतंत्रता मुट्ठी भर लोगों तक सीमित थी। साधारण लोग मज़दूर और किसान अपने देश के शासकों द्वारा शासित होने लगे थे। शासक भेड़िये बन चुके थे और जनता की हालत भेड़ों की तरह हो गई थी ।

'प्रजावादी समाजवादी' परसाई की एक और महत्वपूर्ण कहानी है जिसमें सिद्धांतों की आड़ में सत्ता-सुख प्राप्त करने वाले नेता की पोल खोली गई है- "मैंने पूछा, 'आगाजी, आपने कांग्रेस क्यों छोड़ी?"
वे बोले- "सैद्धांतिक मतभेद के कारण। मैं सिद्धांत का पक्का आदमी हूँ। सिद्धांत को त्यागकर मैं किसी दल में नहीं रह सकता।
मैंने कहा, "सैद्धांतिक मतभेद को ज़रा और स्पष्ट करके समझाइए। उन्होंने बताया, 'सन् 1952 की बात है। पहला आम चुनाव होने वाला था। उस समय कांग्रेस का टिकट मुझे न देकर मेरे प्रतिस्पर्धी मोहनलाल को दे दिया गया। बस, मेरा सैद्धांतिक मतभेद हो गया और मैंने कांग्रेस छोड़ दी। सिद्धांत का पक्का हूँ मैं। तभी समाजवाद के नेताओं ने कहा कि हम 1952 में सरकार बनायेंगे, जिसे आना हो आ जाओ। मैं उनकी पार्टी में चला गया। भई, जो सरकार बनानेवाला हो, उसके साथ रहना चाहिए।"[8] दल-बदलू नेताओं का उद्देश्य किसी भी तरह से मंत्रीपद प्राप्त करना, गाड़ी में घूमना, सरकारी बंगलों में रहना एवं विदेशों की यात्रा करना ही है। चुनाव में एक दूसरे के विरूद्ध लड़नेवाले नेता चुनाव के बाद सत्ता का सुख प्राप्त करने के लिए अपने वादों, सिद्धांतों तथा नीतियों को छोड़कर सत्ता-पक्ष में शामिल हो जाते हैं।

'राजनीति का बँटवारा' परसाई जी की एक प्रसिद्ध कहानी है। इस कहानी के `भैया' स्वार्थ की पूर्ति केलिए पारिवारिक सदस्यों को अलग-अलग राजनीतिक दलों के सदस्य बनाते हैं। इनके परिवार ने कई एजेंसियाँ ले रखी हैं, कई चीज़ों के स्टॉकिस्ट हैं। इस परिवार की सबसे बड़ी चिंता यह है कि नगर-निगम में किस पार्टी की जीत होगी? चुंगी की चोरी कैसे की जाएगी? ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफा कैसे कमाया जाएगा? इन सारी चिंताओं को वयोवृद्ध भैया जी अपने अनुभव ज्ञान की चालाकी से हल कर देते हैं। - "भैया जी ने कहा, "मेरी पवित्र आत्मा से समस्या का समाधान निकल आया। तुममें से हरएक एक-एक पार्टी के सदस्य हो जाओ।" "मैं कांग्रेस में हूँ और संगठन कांग्रेस में भी।
'तुम छोटे, जनसंघ के सदस्य हो जाओ। फिर बड़े भतीजे से कहा, तुम समाजवादी पार्टी के सदस्य हो जाओ।
फिर छोटे भतीजे से कहा, तुम कम्युनिस्ट हो जाओ।
सबसे छोटे भाई से कहा, तुम मार्क्सवादी पार्टी में शामिल हो जाओ। और वह बिगड़ा लौण्डा जो है, वह नक्सलवादी हो ही गया है।"

परिवार ने संतोष की साँस ली। भैया जी खुश थे। कहने लगे,"देखा तुमने?राजनीतिक ज्ञान इसे कहते हैं। अब अपने घर में सब पार्टियाँ हो गईं। किसी का भी नगर-निगम हो, चुंगी-चोरी पक्की। हमने सारी पार्टियों को तिजोड़ी में बंद कर लिया है।"[9]परसाई जी लोभी व स्वार्थी नेताओं की मानसिकता का पर्दाफाश करते हैं। भैया जी उन नेताओं का प्रतीक है जिन्होंने

अपने तथा अपने परिवार के फायदे के लिए राजनीति को सेवा के बदले केवल एक पेशा बना रखा है।

जब प्रलय आया था तब सरकार एवं वैयक्तिक संगठनों ने करोड़ों रुपए राहत के लिए खर्च किए। लेकिन यह रकम के कुछ हिस्से राहत कार्यक्रमों के सिलसिले में नेताओं एवं कर्मचारियों के खाते में जमा हुए। इस प्रकार प्राकृतिक प्रकोप को भी नेतागण और अफसर, कैसे उत्सव में बदल लेते हैं, इसका भयावह चित्रण परसाई ने `अकाल उत्स' में किया है। परसाई इस वर्ग की संवेदनशून्यता को खुलकर दिखाते हैं- "हर साल अकाल आता है,जैसे हर साल स्वाधीनता-दिवस और.गणतंत्र दिवस आते हैं.... बड़ी प्रार्थना होती है। जमाखोर व मुनाफाखोर साल भर अनुष्ठान कराते हैं। इंजीनियर की पत्नी भजन गाती है- प्रभु,कष्ट हरो सबका।' प्रभो, इस साल भी इधर अकाल कर दो और इनको राहत कार्य का इंचार्ज बना दो। तहसीलदारिन, नायबिन, ओवरसीअरन,सब प्रार्थना करती हैं। सुना है विधायक-भार्या और मंत्री-प्रिया भी अनुष्ठान कराती हैं।"[10] भारत के अफसर, नेता-मंत्री सब इस प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं का इंतज़ार करते हैं ताकि राहत-कार्यक्रमों के सिलसिले में लाखों-करोड़ो रुपये हासिल कर सकें।

संक्षेप में हरिशंकर परसाई जी की कहानियाँ व्यंग्य के सहारे राजनीति के सभी पहलुओं का पर्दाफाश करती हैं। वे हिन्दी के पहले कहानीकार हैं जिन्होंने राजनीति के षड्यंत्रों और विसंगतियों को खुलकर लिखने का साहस दिखाया है।वे अपनी बात कहने से हिचकते नहीं हैं।सम्राट को नंगा कहने का धैर्य भी उनमें है। उनकी कहानियाँ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

संदर्भ:

1. डॉ.एस.वाय.होनगेकर, डॉ.आरिफ महान(सं) - प्रतिनिधि हिंदी कहानियाँ - पृ.70, अमन प्रकाशन 104A/80C रामबाग कानपुर 20012, प्रकाशन-2018
2. https://hindikahani.hindi-kavita.com/
3. वही
4. सं.कमला प्रसाद, प्रकाश दुबे - हरिशंकर परसाई चुनी हुई रचनावली (भाग-एक) - पृ.62, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली 110002, प्रकाशन-2000
5. वही - पृ.58,59
6. वही - पृ.335
7. https://hindikahani.hindi-kavita.com/
8. सं.कमला प्रसाद, प्रकाश दुबे - हरिशंकर परसाई चुनी हुई रचनावली (भाग-एक) - पृ.111 वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली 110002 प्रकाशन-2000
9. https://the-gyan.in/rajniti-ka-batwara-harishankar-parsai-vyangya/
10. 10.सं.कमला प्रसाद, प्रकाश दुबे- हरिशंकर परसाई चुनी हुई रचनावली (भाग-एक) - पृ.178 वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली 110002 प्रकाशन-2000

सहायक ग्रंथ

1. साहित्य में मिथकीय संरचना का अनुशीलन- डॉ.शरद सुनेरी- अमन प्रकाशन, 104A/80C रामबाग कानपुर- 20012, प्रकाशन-2012
2. परसाई के साहित्य में समकालीन यथार्थ- डॉ.संध्या कुमारी सिंह - अमन प्रकाशन, 104A/ 80C रामबाग, कानपुर - 20012, प्रकाशन-2011
3. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी व कहानीकार- कृष्णा अग्निहोत्री - अमन प्रकाशन, 104A/80C रामबाग, कानपुर - 20012, प्रकाशन-2019

◆ असिस्टेंट प्रोफ़ेसर
हिन्दी विभाग
सरकारी वनिता कॉलेज
तिरुवनंतपुरम।
फोन - 9446739173

संवेदना और यथार्थ के सहज सम्मिश्रण की कविता

◆ डॉ. गिरीश कुमार के के

सारांश :

साहित्य विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है । विभिन्न साहित्यिक विधाओं में कविता का अलग महत्व है। संवेदना कविता के लिए प्राण तत्व है । आदि कविता की उत्पत्ति भी संवेदना से हुई है । आधुनिक युग में आकर कविता में संवेदना और यथार्थ का सहज सम्मिश्रण हुआ। फलस्वरूप जीवन और जगत की नाना गतिविधियों से संबंधित महत्वपूर्ण काव्य-रचनाओं का आगमन हुआ । समकालीन कविता मानव जीवन से निकट का संबंध रखती है । विचारों की बहुलता के माध्यम से वह सब के लिए उचित स्थान देती है और सब के अधिकार के लिए प्रयत्न भी करती है। वर्तमान समाज के ऊपर मंडराती विभिन्न समस्याओं को लेकर वह चिंतित है। इनको लेकर अपनी तर्कपूर्ण राय भी वह खुलकर प्रकट करती है। व्यापक जन समाज की भाषा में इन गंभीर विषयों को पेश करके उन सभी मुद्दों से जनता को अवगत कराने का कार्य भी वह करती है। समकालीन हिन्दी कविता की संवेदना और उसमें चित्रित जीवन-यथार्थ के विविध सन्दर्भों को परखना इस आलेख का उद्देश्य होता है ।

बीज शब्द :

कविता, संवेदना, यथार्थ, काव्य-संवेदना, मानवीयता, प्रतिरोध, शासक, आम आदमी, धर्म, मीडिया,पर्यावरण।

मूल आलेख :

कविता संवेदना की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति होती है, जिसमें कवि अपनी संवेदना को युगीन यथार्थ के साथ मिलाकर व्यापक आयाम देने का कार्य करता है । काव्येतिहास के प्रारंभिक दौर में संवेदना की प्रमुखता रही । लेकिन कालांतर में उसमें यथार्थ का भी सन्निवेश हुआ । असल में ये दोनों तत्व कविता की नवीनता के द्योतक हैं । नवीन बनने के लिए उसे जन-जीवन की संवेदना और विशाल जीवन-यथार्थ से निकट का संबंध होना ज़रूरी है । दूसरे शब्दों में कहने पर संवेदना के माध्यम से ही उसको व्यापक जन समूह की वाणी बनने की क्षमता मिलती है तो यथार्थ के माध्यम से जीवन की वास्तविकताओं से साक्षात्कार भी। डॉ. जगदीश गुप्त ने ठीक ही कहा है :- "मैं कविता को मानवीय चेतना की अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति का श्रेष्ठतम रूप मानता हूँ।"[1] मानवीय चेतना की सार्थक अभिव्यक्ति के रूप में कविता का जो विकास हुआ है उसका अपना एक लंबा इतिहास होता है, जहाँ उसने मानवीय संवेदना से परिचालित तथा युग विशेष की ताज़गी को अपने भीतर समेटकर इन कालखण्डों को पार किया है ।

हिन्दी कविता के सन्दर्भ में विचार करने पर यह मालूम हो जाएगा कि आदिकाल से लेकर उसमें यथार्थ और संवेदना का समुचित सहयोग विद्यमान है । लेकिन प्रगतिवादी काव्यान्दोलन के पश्चात उसके लिए एक व्यवस्थित मार्ग मिलता है, क्योंकि यहाँ कविता सामाजिक यथार्थ से गहरे अर्थों में जुड़ी हुई रहती है । सामाजिक यथार्थ की यह परंपरा असल में आम आदमी की संवेदना और उसके जीवन-यथार्थ से विकसित हुई है ।प्रगतिवाद के पहले की कविता में भी संवेदना और यथार्थ का सह-संबंध है, किंतु एक मुहिम के रूप में उसका विकास प्रस्तुत समय में ही हुआ था । अभिव्यक्ति की इस नवीनता ने परवर्ती हिन्दी कविता को गहरे अर्थों में प्रभावित किया था । इसका सबूत साठोत्तर और समकालीन कविता में दृष्टिगोचर होता है। साठोत्तर कविता में जीवन के यथार्थ को विद्रोहात्मक अभिव्यक्ति मिली है, तो समकालीन कविता में जीवन की विविधता का विस्तार हुआ है। समकालीन कवि अपने समय का ऐसा गवाह प्रस्तुत कर रहे हैं जिसमें कुछ भी अछूता न रह गया । संवेदना और यथार्थ के अद्भुत सामंजस्य के द्वारा कवि समय के साथ अपनी प्रतिबद्धता को निभा रहे हैं । मैनेजर पाण्डेय के विचार में :- "साहित्य का एक दायित्व अपने पाठकों को यह बोध कराना भी

है कि वे कैसे समय में और समाज में जी रहे हैं। यह किसी भी रचना की समकालीनता का एक महत्वपूर्ण पक्ष है, जो कवि या लेखक ऐसे बोध को बोझ समझते हैं, वे अपनी रचना में अपने समय और समाज का निवासी होने के बदले अपने आत्मलोक का वासी होना पसन्द करते हैं।"[2] अर्थात् समय की वास्तविकता का बखान साहित्यकार का फर्ज़ है। जो इसमें जीता है वह अमर बन जाता है और उसकी कृति महान बन जाती है। वह कृति हर युग में प्रासंगिक भी बनी रहती है। लेकिन यह कोई आसान काम तो नहीं है। इसको प्राप्त करने के लिए रचनाकार को अपने परिवेश के साथ, परिवेश की भीषणता के साथ कठिन संघर्ष करना पड़ता है। सामाजिक एवं साहित्यिक नियमों का उल्लंघन इसके लिए ज़रूरी बन जाता है। राजेश जोशी की कविता 'उल्लंघन' इस संघर्ष-गाथा की अभिव्यक्ति है :-

कविता उल्लंघन की एक सतत प्रक्रिया है
व्याकरण के तमाम नियमों और
भाषा की तमाम सीमाओं का उल्लंघन करती
वह अपने आप ही पहुँच जाती है वहाँ
जहाँ पहुँचने के बारे में कभी सोचा भी नहीं था मैंने
एक कवि ने कहा था कभी कि स्वाधीनता घटना नहीं, प्रक्रिया है
उसे पाना होता है बार-बार...लगातार
तभी से न जाने कितने नियमों की अविनय सविनय अवज्ञा करता
पहुँचा हूँ मैं यहाँ तक ![3]

काव्य-संवेदना के युगानुकूल परिवर्तन की विस्तृत समय-सीमा इन पंक्तियों में अनुगूँजित है। कवि अपनी लेखनी के माध्यम से पुरातनपंथी विचारों का उल्लंघन करता है, चाहे वह साहित्यिक हो या सामाजिक। व्याकरण, सौन्दर्शास्त्र, भाषा इन सभी को लेकर प्रचलित तमाम विचारों को ध्वस्त करके कविता अपने वर्तमान स्वरूप पर पहुँची है जहाँ आकर कवि और कविता दोनों ने अपने समय के साथ पूर्ण रूप से तादात्म्य स्थापित कर दिया है। अपने परिवेश के विस्तृत जन-जीवन को आधार बनाकर उनके जीवन को स्तरीय बनाने की चिंता कविता का वास्तविक मकसद बन गया है। परिवेश के प्रति कवि की जागरूकता, अपनी मिट्टी के प्रति समर्पण, मानवीयता की चिंता आदि काव्य-सृजन के कारक तत्व बन गये हैं। विनय दुबे की कविता 'मैं सतपुड़ा का एक कवि' इस सन्दर्भ में काफी चर्चित है । काव्य-संवेदना के रूपायन में परिदृश्य की भूमिका वह व्याख्यायित करती है :-

मैं सतपुड़ा का एक कवि हूँ
और सतपुड़ा एक पहाड़ है,
मुझमें एक जंगल रहता है
बारिश में भीगता जंगल
शीत में कँप कँपाता जंगल
ग्रीष्म में सूखता जंगल
मुझमें एक जंगल रहता है
जंगल में पेड़ रहते हैं ऊँचे-ऊँचे
घने-घने पेड़ ।[4]

इससे यह प्रमाणित हो जाता है कि कविता परिवेश का जीता-जागता चित्रण है। अपने समय के साथ, समय की ज्वलंत समस्याओं के साथ उसका अटूट संबंध होता है। इस दृष्टि से यदि समकालीन कविता का विवेचन करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वह देश के आम आदमी के दुख-दर्द की शाब्दिक अभिव्यक्ति है। भारतीय लोकतान्त्रिक व्यवस्था में अब भी औसत आदमी हाशिए पर है। वह अपनी रोज़ी रोटी की तलाश में भटकता है। सत्ता बदलने पर भी उसकी स्थितियाँ नहीं बदलीं। शासक नई अर्थ नीतियों के तहत उसका शोषण कर रहे हैं। भारतीय समाज के निचले तबके के ये लोग आर्थिक असुरक्षा से व्यस्त हैं। इसका प्रमुख कारण शासकीय स्तर पर व्याप्त भ्रष्टाचार है। आम आदमी से हमदर्दी समकालीन कविता की पहचान बन गई है। राजनीतिज्ञों, आततायियों एवं शासक वर्ग की अवसरवादिता को वह खुलकर प्रकट करती है।

कुमार अम्बुज की कविता 'अमीरी रेखा' काव्य-संवेदना को बचाकर रखने के लिए साधारण लोगों के पक्ष में खड़े हो जाने की आवश्यकता का समर्थन करती है। कविता के लिए सहजता अपेक्षित गुण है। यह गुण मुख्यधारा समाज के पास नहीं रह गया है, जिन्हें प्राप्त करने के लिए हाशिएकृत वर्गों की ओर मुड़ना ज़रूरी बन गया है :-

शब्दों के मानी इस तरह भी ख़त्म किये जाते हैं
तब अपने को और अपनी भाषा को बचाने के लिए
हो सकता है तुम्हें उस आदमी के पास जाना पड़े
जो इस वक़्त नमक भी नहीं नहीं ख़रीद पा रहा है
या घर की ही उस स्त्री के पास
जो दिन-रात काम करती है
और जिसे आज भी सही मज़दूरी नहीं मिलती।[5]

कविता अपनी संवेदना को पूरी तरह उपेक्षित वर्ग के साथ जोड़कर रखना चाहती है। इन लोगों के जीवन-यथार्थ का चित्र खींचकर वह अपनी संरचना को गतिशील कर रही है। अपने समय की भीषणता को पार करने के लिए संवेदनशीलता को वह माध्यम बना रही है। वास्तव में समकालीन कविता अपने समय का साक्ष्य दे रही है। बाज़ारवाद से उत्पन्न मानवीयता के ध्वंस पर प्रतिबंध लगाने केलिए वह मानव समाज को एकत्रित करने का सराहनीय प्रयास करती है। क्योंकि बाज़ार की नवीन अर्थ नीति का प्रतिरोध आदमी अकेले नहीं कर सकता। इस केलिए दूसरे की हिस्सेदारी की ज़रूरत है। 'यथार्थ इन दिनों' कविता में मंगलेश डबराल ने मानवीय संवेदना के ऊपर मंडराते हिंसात्मक व्यवस्था की पैनी निगाह को व्यक्ति किया है :-

एक मरा हुआ मनुष्य इस समय
जीवित मनुष्य की तुलना में कहीं ज़्यादा कह रहा है
उसके शरीर से बहता हुआ रक्त
शरीर के भीतर दौड़ते हुए रक्त से कहीं ज़्यादा आवाज़ कर रहा है
एक तेज़ हवा चल रही है
और विचारों, स्वप्नों, स्मृतियों को
फटे हुए कागज़ों की तरह उड़ा रही है
एक अंधेरी-सी काली-सी चीज़
हिंस्र पशुओं से भरी हुई रात चारों ओर इकट्ठा हो रही है
एक लुटेरा, एक हत्यारा, एक दलाल
आसमानों, पहाड़ों, मैदानों को लाँघता हुआ जा रहा है
उसके हाथ धरती के मर्म को दबोचने के लिए बढ़ रहे हैं।[6]

मानवीयता के ऊपर हिंस्रवृत्ति का आघात कई स्तरों पर एक साथ हो रहा है। राजनीति, धर्म, संस्कृति सब कहीं इस प्रकार का आघात हो रहा है। धार्मिक लोगों के भीतर अधार्मिक विचार का प्रचार-प्रसार करके मनुष्य को आपस में लड़ने का कार्य नियत तरीके से चल रहा है। मानव के भीतर दबी पड़ी हिंसक वृत्ति के प्रस्फुटन के कई उदाहरण वर्तमान दौर में हैं। इस प्रसंग में काफी उल्लेखनीय है बोधिसत्व की कविता 'पागलदास'। कविता यह प्रामाणित कर देती है कि देश अब संवेदनशीलों को रहने लायक जगह नहीं है। सत्य, न्याय, मर्यादा जैसे नैतिक मूल्यों को यहाँ कोई महत्व नहीं है। कविता में प्रसिद्ध पखावज वादक पागलदास की अंतरात्मा की हत्या का संकेत है, जो नैतिक मूल्यों की रक्षा करना चाहते थे। स्वार्थता पर केन्द्रित, नैतिकता से रहित समाज ने उनकी हत्या की थी। सांप्रदायिकता के कारण समाज में लगातार हो रहे सत्य और स्वतंत्रता के हनन का निदर्शन है 'पागलदास' :-

जो पागलदास
सच की रक्षा चाहते थे
चाहते थे न्याय
वध किया गया उनका
मार दिया गया उनको घेर कर उनके ही आँगन में
एकांत में नहीं
उनके लोगों की मौजूदगी में।[7]

इस प्रकार के दंगा-फसादों में मनुष्य एवं

मानवीय भावनाओं के लिए कोई महत्व नहीं रह गया है । कट्टर धार्मिक अनुशासन ने मनुष्य को अन्धा बना दिया है । वह दुश्मन की तरह दूसरे धार्मवलंबी लोगों पर आक्रमण करता है । उनकी गलती क्या है ? उन्हें क्यों मारता है ? जैसे सवाल इन दंगों में निरर्थक हैं । असल में इन अस्त्रों के ज़रिए लाभ उठाने वाले कुछ और लोग हैं जिनके लिए ये सब बहाना मात्र हैं । लक्ष्य है केवल अपनी स्वार्थता, अपने एकाधिकार बनाए रखना । समाज में घटित होनेवाली इन्हीं घटनाओं की वास्तविकता जनता तक पहुँचाने में मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । लेकिन आजकल मीडिया भी सच्चाई से कोसों दूर है । मीडिया अपने रेटिंग को लेकर चिंतित है, सच्चाई को लेकर नहीं । मीडिया द्वारा संचालित दुनिया का चित्रण मदन कश्यप की पंक्तियों में देखिए :-

उसके हाथ में एक फूल होता है
जो मुझे चाकू की तरह दिखता है
सच तो यह है कि वह चाकू ही होता है
जो कैमरों में फूल जैसा दिखता है
और उन तमाम लोगों को भी फूल ही दिखता है
जो अपनी आँखों से नहीं देखते।[8]

वर्तमान बाज़ारी माहौल में सच्चाई को ठीक तरह से देख पाना अत्यधिक कठिन कार्य है । हमारे सामने मोहक रूप में दिखाई पड़नेवाली दुनिया भीतर ही भीतर पूर्ण रूप से मानव-विरोधी ही है, जिसके उद्देश्य-लक्ष्यों को आम जनता तक पहुँचने में साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है । मुनाफे पर केन्द्रित बाज़ारू दृष्टि ने मनुष्य और पर्यावरण के सहज-संबंध को भी दरकिनार कर दिया है । मनुष्य अब प्रकृति को लेकर उतने संवेदंशील नहीं रहे जितने अतीत में थे । बाज़ारू संस्कृति ने सबको बिकाऊ चीज़ बना दी है । धरती उन केलिए अपने इच्छानुसार कुचल डालने की एक वस्तु मात्र रह गई है । औद्योगीकरण ने मनुष्य को प्रकृति से अलग करने का कार्य शुरू किया । अब वह यंत्रों के सहारे उसके हृदय को चीर रहा है । पहाड़ों, टीलों के अस्तित्व को क्षण भर मिटाने के औजार अब उनके पास हैं । पर्यावरण के स्वतंत्र अस्तित्व को भूलकर की गई योजनाओं की त्रासद परिणति है तालाबों एवं नदियों का खो जाना, भूगर्भ जल का अभाव, भौमताप, बाढ़ आदि । लीलाधर जगूडी का विचार यहाँ सर्थक प्रतीत होता है - "कुछ लोगों ने इस पृथ्वी को एक परिवार की जगह सिर्फ बाज़ार और कार्यालय की मेज़ बनाकर रख दिया है । कवि इस पृथ्वी पर एक मनुष्योचित सूर्योदय की प्रतीक्षा में है। अपनी सुंदर, प्यारी और वैचारिक पृथ्वी को कवि रसातल में जाने से रोकना चाहता है ।[9] बाज़ारू संस्कृति में किसी भी चीज़ का स्थायी महत्व नहीं है । वह 'यूस एंड थ्रो' कल्चर के पोषक है । यही कल्चर पृथ्वी को खत्म कर रही है । मानव ने धरती को अपने लालच की पूर्ति का साधन माना। अधिक रस चूसकर उसे फेंक दिया। मानव को वामन से भी बड़ा अवतार मानकर पृथ्वी से क्षमा माँगते हुए विजयशंकर चतुर्वेदी लिखते हैं :-

माता, हम वामन से भी बड़े अवतार है
हमने माप लिया है तुम्हें एक ही अंगुल में
और चूस कर फेंक दिया है दशहरी आम की तरह।[10]

वर्तमान समय में मानवीय संवेदना के सामने प्रतिकूलताओं की एक लंबी कतार है । इन सभी विषमताओं को बारीकी से समझाने का प्रयत्न प्रत्येक साहित्यकार कर रहा है । उनका लक्ष्य मनुष्यता की, मनुष्य की जिजीविषा की स्थापना है। कविता प्रतिकूल स्थितियों के सामने हार नहीं मानती है । मानवीयता पर कविता की गहन निष्ठा एकांत श्रीवास्तव की कविताओं का प्राण तत्व है :-

मैं तो बचाकर रखना चाहता हूँ
उस लोहे को जो मेरे खून में है ... .
मिट्टी, हवा में, पानी में
पालक में और ख़ून में जो लोहा है
यही सारा लोहा काम आता है एक दिन
फूल जैसी धरती को बचाने में ।[11]

निष्कर्ष :

इस प्रकार समकालीन हिन्दी कविता की संवेदना और उसमें अभिव्यंजित यथार्थ पर विचार करने के पश्चात यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि समकालीन कविता अपने आसपास की असंख्य गतिविधियों का वास्तविक चित्र खींचकर मानवीयता का मार्ग प्रशस्त कर रही है । सामान्य जन-समाज के ऊपर होने वाली अनगिनत कठिनाइयों के समय में भी वह उनके पक्ष में बोलती है, बोलकर प्रतिरोध ज़ाहिर करती है । काव्य की संवेदना समस्त संसार के सूक्ष्म निरीक्षण से रूपायित हुई है । कवि की जागरूकता एवं प्रत्येक मुद्दे को लेकर उनकी तटस्थ दृष्टि मानवीयता, प्रकृति, संस्कृति, भाषा आदि को बचाने के लिए कार्यरत है ।

सन्दर्भ :

1. सं. जगदीश गुप्त, नयी कविता (खण्ड एक), लोकभारती प्रकाशन, 2016,पृ. 20
2. मैनेजर पाण्डेय, आलोचना की सामाजिकता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ.168
3. राजेश जोशी, उल्लंघन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृ.10,11
4. विनय दुबे, भीड़ के भवसागर में, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ.13
5. कुमार अंबुज, अमीरी रेखा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ.22
6. मंगलेश डबराल, नये युग में शत्रु, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ.20,21
7. बोधिसत्व, हम जो नदियों का संगम है, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृ.14
8. मदन कश्यप, पनसोखा है इन्द्रधनुष, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ.104
9. विजयशंकर चतुर्वेदी, पृथ्वी के लिए तो रुको, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, (फ्लैप से उद्धृत)
10. वही, पृ.77
11. एकांत श्रीवास्तव, धरती अधखिला फूल है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ.14

◆ सहायक आचार्य,
हिन्दी विभाग,
कोच्चि विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
कोच्ची, केरल - 682022
मोबाइल : 9495106637
ई-मेल : girish372@gmail.com

पंजाब में हिन्दी-दशा, दिशा एवं चुनौतियाँ

◆ **डॉ. पवन कुमार शर्मा**

भाषा आज एक ब्राण्ड बन गई है। पंजाब की स्थिति के अन्तर्गत हिन्दी का ब्राण्ड बड़ा है, विशेषकर पंजाब में हिन्दी का प्रयोग करने वालों की संख्या में द्रुत गति से वृद्धि हुई है। हिन्दी के विकास में पंजाब की भूमिका अग्रणी रही है। आदिकाल से लेकर आधुनिककाल तक हिन्दी का विपुल साहित्य उपलब्ध है। पंजाब में मीडिया, टी.वी., विज्ञापन, समाचार पत्र आदि हिन्दी के पठन-पाठन के लिए अपना सहयोग दे रहे हैं। यह हिन्दी भाषा की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। भारतीय भाषाओं को एक साथ लेकर हम लोग उसके क्रम में विकास करें।

भारत के सिंह द्वारा अमृतसर की भूमिका

महत्वपूर्ण है। पंजाब की हुंकार विश्व में दिखाई देती है, फिर यह हिन्दी के क्षेत्र में पीछे कैसे रह सकता है। कुछ समय के लिए ग्रहण तो लग सकता है, कुछ समय के लिए ग्रहण लगने से चीज़ें धूमिल अवश्य हो सकती हैं।

अन्धकार वह जहाँ साहित्य नहीं।
मूर्दा है वह देश जिसकी निज भाषा नहीं।।

साहित्य और भाषा केवल विचार-विनिमय का साधन मात्र नहीं होती, अपितु समाज और संस्कृति का प्रतिबिम्ब होती है। हिन्दी का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ। इसी प्रकार पंजाबी भाषा का उद्भव भी शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ। हिन्दी भाषा के तीन रुप हैं- राजभाषा, मातृभाषा (40 करोड़ व्यक्ति बोलते हैं) और सह राजभाषा। हिन्दी संस्कृति तथा मूल्यों की वाहिनी तथा अस्मिता की पहचान भी करवाती है। यह भारतीय संस्कृति की परम्परा की वाहक है। अगर भवन की नींव इतनी सशक्त हो तो महल स्वतः ही विशाल, महत्वपूर्ण और मज़बूत बनता है।

10वीं शताब्दी में विदेशी आक्रान्ताओं का रौद्र रुप पंजाबियों ने झेला। पंजाब वह धरती है, जिसके माध्यम से पहली चोट समाज और संस्कृति पर पड़ी, इसके साथ कार्यालयों और भाईचारे पर पड़ती है। यह सब सहनेवाला पंजाब ही पहला प्रदेश रहा। पंजाब की भूमि उर्वर है। इसे धान का कटोरा कहा जाता है। इतने आक्रमणों, विध्वंसों, ज़ख्मों के बाद भी इस धरती ने साहित्य के माध्यम से कोहिनूर दिया। टैगोर ने भारत को संस्कृतियों का समुद्र कहा है; पंजाब ने सिद्ध भी किया।

साहित्य की दृष्टि से श्रद्धाराम फिल्लौरी का नाम चिरकाल से स्मरणीय एवं स्तुति के योग्य है। सप्त सिन्धु पंजाब की धरती है, जहाँ वेदों की रचना हुई, ऋचाओं का पठन-पाठन हुआ। 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में हिन्दी के अनेक सन्तों की वाणी है। हिन्दी को विपुल साहित्य देनेवाला पंजाब रहा, जिसने जीता-जागता समाज, जीवन जीने की कला पंजाब को दीं। संस्कृत की मुँह बोलती तस्वीर करतारपुर आश्रम में है। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने हिन्दी प्रचार-प्रसार के लिए पंजाब को अपनी कर्म भूमि बनायी। आधुनिक काल के आसपास परतन्त्रता चहुँ ओर फैली हुई थी। श्रद्धाराम फिल्लौरी ने हिन्दी प्रचार-प्रसार आरम्भ किया। अध्यापाक पूर्ण सिंह ने छः निबन्ध लिखकर पंजाब का नाम हिन्दी निबन्ध के क्षेत्र में उत्कृष्ट स्थान प्राप्त किया। उदयशंकर भट्ट, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी (उसने कहा था), भीष्म साहनी, यशपाल, मोहन राकेश आदि अनेक हिन्दी के साहित्यकार पंजाब की धरती पर पैदा हुए और उन्होंने हिन्दी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। पंजाब सीमा वृत्ति क्षेत्र होने के कारण पद-दलित होता रहा। पंजाबियों की जुझारू प्रवृत्ति रही है।

पंजाब में आदिकाल से ही हिन्दी भाषा के स्रोत उपलब्ध हैं। डॉ. पीताम्बर दत्त बडथ्वाल ने गोरखनाथ की 40 रचनाओं के बारे में बताया है कि "डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नाथ सम्प्रदाय में नाथों के 12 पथों में से तीन का सम्बन्ध पंजाब से माना है। उनके अनुसार नाटेश्वरी पंथ का सम्बन्ध गोरख टीले से, पागल पंथ का अबोहर से तथा गंगानगर पंथ का गुरदासपुर से था। जालन्धर नाथ जालन्धर में रहे थे।"[1] पंजाब में उपलब्ध हिन्दी भक्ति साहित्य की राम काव्य धारा में हरि जी कृत आदि रामायण, गुरु गोविन्द सिंह कृत रामावतार, सन्तोख सिंह कृत वाल्मीकि रामायण महत्वपूर्ण हैं।[2]

हिन्दी कहानी लेखन में पंजाब के हिन्दी प्रेमी पीछे नहीं रहे। उपेन्द्रनाथ अश्क मूलतः पंजाबी सभ्यता और संस्कृति से जुड़े रचनाकार हैं। पंजाब के आदर्शों और संस्कृति को उन्होंने अपने साहित्य में पूर्ण अभिव्यक्ति दी है।[3] चन्द्रधर शर्मा गुलेरी (उसने कहा था), महीप सिंह, वीरेन्द्र मेंहदी दत्ता, राकेश वत्स, विनोद शाही, कृष्णा सोबती (सिक्का बदल गया), रवीन्द्र कालिया, सैली बलजीत, सुरेश सेठ आदि ने सराहनीय योगदान दिया एवं हिन्दी कहानी को चरम तक पहुँचाया।

हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में कृष्णा सोबती (डार से बिछुड़ी 1958, मित्रो मरजानी 1967, सूरज मुखी अन्धेरे के 1990, यारों के यार 1968, तिन पहाड़ 1989, सोबती एक सोहबत 1989, ज़िन्दगी नामा 1979, ऐ लड़की 1991) ने पंजाब के सांस्कृतिक मूल्यों का, पंजाबी वेशभूषा, भाषा, परिवेश आदि का जो चित्रण किया है, वह पढ़ते ही पाठक के मन को उद्वेलित कर देता है।

जगदीश चन्द्र माथुर के (धरती धन न अपना, नरक कुण्ड में वास आदि) उपन्यासों में पीड़ित, दलित, शोषित एवं परिवेशगत परिस्थितियों का चित्रांकन मूल उद्देश्य रहा है। यशपाल (झूठा-सच 1958, देश द्रोही), मोहन राकेश (अन्धेरे बन्द कमरे, न आने वाला कल, अन्तराल), भीष्म साहनी ने (झरोखे-1967, तमस 1974) अविभाजित पंजाब के प्रमुख शहर लाहौर और उसके आस-पास के क्षेत्रों को मुख्य विषय बनाया। निर्मल वर्मा, डॉ.कृष्णा भावुक, मनमोहन सहगल, डॉ. इन्दूबाली, तरसेम गुजराल, सुदर्शन चैपड़ा आदि ने भी अपना योगदान दिया।

उपेन्द्रनाथ अश्क, चन्द्रगुप्त विद्यांलकार, चन्द्रशेखर ज्ञान सिंह मान, सुदर्शन, हुकमचन्द राजपाल, नरेन्द्र मोहन, सुभाष रस्तोगी, इन्द्रनाथ मदान, संसार चन्द्र, धर्मपाल मैनी, सुरेश सेठ, मोहन राकेश आदि ने भी हिन्दी नाटक विधा को आगे बढ़ाया।

आधुनिक हिन्दी कविता के क्षेत्र में कुमार विकल (एक छोटी सी लड़ाई, रंग खतरे में है, निरुपमा दत, मैं बहुत उदास हूँ) का नाम महत्वपूर्ण है। "कुमार विकल ने अपने वर्तमान नक्सलवादी तेवर तक पहुँचने के लिए स्वच्छन्दतावादी अस्तित्ववादी पड़ाव पार किया है।"[4]

मोहन सपरा ने पंजाब की संस्कृति को अपने काव्य-सृजन में प्रस्तुत किया है। 'आदमी ज़िन्दा है' कविता की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

वही आदमी जो
अपने घर से
उनके शहर की ओर निकल पड़ा है,
बड़ा बेरहम, जालिम और क्रूर हो गया है
अब उसे कुछ भी मंजूर नहीं
वही सन्नाटे में चीरता हुआ।[5]

डॉ.हरमहेन्द्र सिंह बेदी ने 'बातूनी पोस्टर' में आदमी की भटकन और तनाव को दर्शाया है।

एक दो तीन
टूटन, तनाव 'घुटन
अन्तहीन
भूलता है अंकों का क्रम
दूर जैसे कोई
चाँदनी में
पढ़ता है मील पत्थर[6]

हिन्दी निबन्ध के क्षेत्र में पण्डित श्रद्धाराम फिलौरी एक सफल हस्ताक्षर हैं। 'कहित का सुधारना अध्यापक पूर्ण सिंह (आचरण की सभ्यता, मजदूरी और प्रेम, सच्ची वीरता), संतराम बी.ए., सुरेश सेठ आदि निबंधकार हैं। इनके अतिरिक्त बालकृमण, देवेन्द्र सत्यार्थी, श्री रघुनन्दन शास्त्री, डॉ. संसार चन्द्र, जयनाथ नलिन, इत्यादि भी प्रमुख हैं।

पंजाब में हिन्दी आलोचना का प्रतिनिधित्व बालमुकुन्द गुप्त, माधव प्रसाद मिश्रा तथा चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने किया। 'कांगड़ा कलम' और खास तौर पर मौलूराम की चित्रकला पर उनकी मार्मिक टिप्पणियाँ पंजाब के साथ उनके लगाव को प्रमाणित करती हैं।[7]

अनुवाद के क्षेत्र में भी पंजाब के हिन्दी प्रेमी साहित्यकार अग्रगण्य रहे हैं। पंजाब के विद्वानों ने संस्कृत, मलयालम, तेलगू, अंग्रेज़ी और अरबी साहित्य की कृतियों को हिन्दी में अनुदित किया। पंजाब में बीसवीं शती में अनुवाद का कार्य प्रारम्भ हो गया। कालिदास की 'मालविकाग्निमित्रं' को चारुदेव शास्त्री

ने तथा बी.बी. शर्मा ने 1933 में अनूदित किया। अंग्रेज़ी के उपन्यास 'ए टेल ऑफ टू सिटिज़' का हिन्दी रुपान्तरण विजय चैहान द्वारा किया गया।[8]

हिन्दी भारतीय भाषाओं के बीच क्षेत्रीय भाषाओं की तत्सम शब्दावली, प्रशासनिक शब्दावली को संग्रहित करती रही है। इसी प्रकार पंजाबी ने भी लम्बा सफर तय किया है। पंजाबी-हिन्दी तुलनात्मक शब्दकोश और वाक्य-विन्यास उलझे हुए नहीं हैं। दोनों भाषाएँ समानान्तर चल रही हैं। प्रशासनिक कार्यालयों में हिन्दी राजभाषा के आधार पर विभाजन हुआ। 'पंजाबी' हिन्दी के समानान्तर चल रही है, पंजाब में हिन्दी का प्रयोग, टी.वी. पर हिन्दी का प्रयोग, साहित्यिक रचनाओं में हिन्दी का प्रयोग हो रहा है, इसके बावजूद भी हिन्दी के समक्ष चुनौतियाँ हैं।

बदलते हुए परिदृश्य में उपभोक्तावादी संस्कृति की स्थिति में भाषा को सीखने के पैमाने, अपनी संस्कृति और मूल्यों से दूर होते जा रहे हैं। टेक्नोलजी और सूचना प्रोद्यौगिकी में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में अर्थ प्रधान हो गया है। पंजाब में विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों में हिंदी में शोध और हिन्दी अध्यापन कार्य निरन्तर हो रहे हैं। फिर समस्या की जड़ क्या है? हिन्दी भाषा की लिपि वैज्ञानिक है। असंख्य सर्च ईंजन है। आज हिन्दी को अन्तर्राष्ट्रीय धरातल पर बोलने के सम्बन्ध में कोई समस्या नहीं है। हिन्दी लेखक का वर्चस्व पूरे राष्ट्र पर छाया हुआ है। आज युवा वर्ग विदेश गमन की ओर आकर्षित है। हिन्दी भाषा ने हमें मर्यादाएँ सिखाईं । हिन्दी में रोज़गार की संभावना में कोई कमी नहीं, अपार सभावनाएँ हैं।

आज मौलिक संस्कृति हमें प्रभावित कर रही है। सांस्कृतिक समन्वय को अपनी चेतना में पंजाबी संस्कृति, हिन्दी संस्कृति में कोई अन्तर नहीं है। दोनों प्रान्तीय नज़दीकी भाषाएँ हैं; प्रश्न यह है कि अलग कैसे हो गईं। हमने कहीं न कहीं अपना इतिहासबोध खो दिया, शब्द शेष रह गये। कॉलेजों में, ग्रामीण समाज में तथा शहरी समाज में हिन्दी का प्रयोग सांस्कृतिक सामाजिक स्तर के अन्तर्गत हो रहा है।

निष्कर्षत: किसी भी समाज की सभ्यता और संस्कृति के उत्थान एवं पतन में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। भाषा किसी भी समाज, राष्ट्र एवं संस्कृति में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होती है। पंजाब में हिन्दी आदिकाल से ही अस्तित्व में रही है। पंजाब में हिन्दी ने विकास के चरम को छुआ है। फिर भी इसके समक्ष कुछ चुनौतियाँ हैं, जिनका हमें चिन्तन करके समाधान खोजना होगा।

सन्दर्भ:

1. पंजाब का हिन्दी साहित्य -मनमोहन सहगल, लीना पब्लिकेशन, पटियाला, पृ.2
2. पंजाब का हिन्दी साहित्य एवं चिन्तन - डॉ.शैलजा, प्रज्ञा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2022, पृ. 199
3. वही, पृ. 78
4. पंजाब के हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. हुकम चन्द राजपाल, पृ. 61
5. आदमी ज़िन्दा है - मोहन सपरा, आस्था प्रकाशन, नकोदर, 1987, पृ. 94
6. कविवर हरमहेन्द्र सिंह बेदी - रामसजन पाण्डेय, निर्मल पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ. 26
7. पंजाब के हिन्दी साहित्य का इतिहास, आधुनिक काल - डॉ. हुकम चन्द राजपाल, भाषा विभाग पंजाब, पटियाला, 2001, पृ. 222
8. पंजाब का हिन्दी साहित्य एवं चिन्तन – डॉ.शैलजा, प्रज्ञा प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृ. 148

◆सहायक आचार्य-हिन्दी विभाग,
हिन्दू कन्या महाविद्यालय,
धारीवाल जिला,
गुरुदासपुर, पंजाब।

आंचलिकता के परिप्रेक्ष्य में 'आधा गाँव' उपन्यास का विश्लेषणात्मक अध्ययन

◆ डॉ.बिन्दु एम जी

किसी खास अंचल या गाँव को केंद्र में रखकर लिखने की पद्धति को आंचलिकता शब्द के साथ जोड़ सकते हैं।अंचल या गाँव की अपनी मौलिकता होती है। रीति-रिवाज़, आचार-विचार, परंपरा, विश्वास, आस्था, बोलचाल, धार्मिक मान्यताएँ सब उनके अपने होते हैं। हिन्दी साहित्य में, विशेषकर हिंदी उपन्यासों में आंचलिकता की अभिव्यक्ति स्वातंत्र्योत्तर काल में शुरू हुई थी।आंचलिक उपन्यास में कोई नायक या नायिका नहीं होता है। संपूर्ण ग्रामांचल ही उसका विषय होता है।

गाँव या अंचल अंग्रेज़ी शासनकाल में सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से हाशिए पर थे। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भी उनकी स्थिति जैसा का तैसा रह गयी। अंचल की जनता के उद्धार के लिए अधिकारी वर्ग कुछ नहीं करते थे।इस संदर्भ में हमारे साहित्यकार सचेत हो उठे।अंचल की शोचनीय अवस्था की ओर सब का ध्यान आकर्षित करने का दायित्व उन्होंने उठा लिया।

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासकारों में सर्वप्रमुख हैं फणीश्वरनाथ रेणु। उनका विख्यात उपन्यास है 'मैला आंचल।' इस उपन्यास में उन्होंने आंचलिकता को उसकी समग्रता के साथ चित्रित किया है। रेणुजी के अलावा शिवपूजन सहाय, नागार्जुन, भैरवप्रसादगुप्त, मार्कण्डेय जैसे हिन्दी में कई विख्यात आंचलिक उपन्यासकार हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासकारों में डॉ राहीमासूम रज़ा का अलग स्थान है।। वे एक बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार हैं। उपन्यासकार के रूप में उनकी अधिक ख्याति हुई है। 'आधा गाँव' उनका एक बहुचर्चित आंचलिक उपन्यास है। इस उपन्यास में रज़ा ने गाँव के जीवन को उसकी पूरी सच्चाई के साथ चित्रित करने का कार्य किया है।

'आधा गाँव' में रज़ा ने उत्तर प्रदेश के गांज़ीपुर जिले के गंगौली गाँव को पृष्ठभूमि बनाई है। उन्होंने गंगौली के आधे हिस्से को ही कथा भूमि बनायी है।इसके बारे में रज़ा स्वयं कहते हैं - "मैंने पूरे गाँव को नहीं चुना, बल्कि गाँव के उस टुकड़े को चुना जिसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ" [1]

आंचलिक उपन्यास में उपन्यासकार का उस अंचल का निवासी होना बहुत ज़रूरी है। साथ ही वह उस अंचल की समस्त विशेषताओं का जानकार भी हो।रज़ा तो गंगौली गाँव का निवासी है। उस गाँव के साथ उनका उतना निकटतम संबंध भी है। "मैं गंगौली का हूँ क्योंकि वह केवल एक गाँव ही नहीं है क्योंकि वह मेरा घर भी है"। [2]

'आधा गाँव' में गंगौली के शिआ मुसलमानों के जीवन का वर्णन है। साथ ही वहाँ रहनेवाले लोगों के बीच के आपसी संबंधों, प्रेम और सहकारिता को उन्होंने उपन्यास में दिखाया है।

गंगौली के जन जीवन के साथ जुड़े हुए आचार-विचार, रीति-रिवाज, अन्धविश्वास, रूढ़ियों, परंपराओं आदि का विस्तृत वर्णन करते हुए रज़ा ने गंगौली नामक ग्रामांचल को पूर्णता के साथ पाठक के सामने लाने का सराहनीय कार्य किया है।

गंगौली गाँव को उत्तर पट्टी और दक्षिण पट्टी नाम से विभाजित किया गया है।वहाँ के लोगों के अपने-अपने रीति रिवाज़ हैं। किन्तु इन सबके ऊपर वे सब गंगौली के ही हैं। मोहर्रम तो गंगौली वासियों का धार्मिक त्यौहार है।इस त्योहार का उपन्यास में विस्तृत वर्णन दिया गया है। यह मोहर्रम ही गंगौली वासियों के आपसी संबंध को इतना सुदृढ़ बनाता है। इमाम हुसैन जो मुसलमानों केलिए पूजनीय है, उनकी

हत्या हो जाने के बाद मुसलमान लोग उनकी याद में ढाई महीने तक का मोहर्रम मनाते हैं। उनका विश्वास है कि इमाम हुसैन मोहर्रम के समय हिन्दुस्तान आते हैं और दसवीं बैठक के बाद वे वापस कर्बला लौटते हैं। इमाम हुसैन की मृत्यु की याद में वे मातम करते हैं। इसके लिए अनेक विधि-वधान हैं। इनका वे सब अक्षरशः पालन करते हैं। इस प्रकार के कई अन्धविश्वास गंगौली गाँव में व्याप्त हैं।

'आधा गाँव' उपन्यास का सर्वप्रमुख पात्र गंगौली गाँव ही है। गाँव को उसकी पूर्णता में चित्रित करने केलिए वहाँ के समस्त पात्रों को उपन्यास में लाना ज़रूरी है। गंगौली गाँव के सभी लोगों को रज़ा ने उपन्यास में स्थान दिया है। फुन्न नमियाँ, अब्बू मियां, सईदा, मौलवी बेदार आदि इनमें प्रमुख हैं। अतः 'आधा गाँव' किसी एक व्यक्ति की कहानी नहीं है, यह गंगौली गाँव और वहाँ की जनता की कहानी है।

रज़ा ने गंगौली वासियों के सामाजिक जीवन का सत्यांकन उपन्यास में किया है। उनके परिवार,रहन-सहन,खान-पान स्त्रियों की स्थिति, अनैतिक यौन संबंध, छूआछूत आदि का विस्तृत वर्णन उपन्यास में है।

गाँव के निवासी निष्कलंक होते हैं। साथ ही अशिक्षित भी। इसलिए छोटी-छोटी बातों को लेकर वे लड़ते-झगड़ते रहते हैं। लड़के को जन्म न देने के कारण सकीना की सास उसको हमेशा कोसती रहती है "यहाँ तक कि फिर लड़की हो जाती और फुस्सु का मुँह लटक जाता और बब्बनबी हाथ उठा-उठाकर सक्कीना को कोसने लगती है– लड़की -ये लड़की पैदा तो किए जा रही हौ–बकीई घर में रोकड न धरा है"[3]

गाँव में स्त्रियों की स्थिति बहुत शोचनीय है। निम्न जाति की स्त्रियों के साथ पुरुषों का अनैतिक यौन संबंध है। "दूसरा ब्याहकर लेना या किसी ऐरी गैरी औरत को घर में डाल लेना बुरा नहीं समझा जाता था।शायद ही मियां लोगों का कोई ऐसा खानदान हो जिसमें कलमी लड़के और लड़कियाँ न हो जिनके घर में खाने को भी नहीं होता, वे भी किसी न किसी प्रकार कलमी आमों और कलमी परिवार का शौक पूरा कर ही लेते है"[4]

गंगौली गाँव में जातिगत उच्च-नीचत्व की समस्या है। शिआ-सुन्नी के बीच आपसी स्पर्धा है। शिआ मुसलमान खुद को उच्च स्तरीय मानते हैं। अन्य जातियों के साथ इनका कोई मेल-जोल नहीं है। हिन्दू लोगों को भी ये अलग रखते हैं। निम्न जाति के लोगों की चीज़ें वे छुएँगे नहीं। "मुसलमान तो मौलवी बेलदार हैं जो हिन्दुओं का छुआ नहीं खाते। मुसलमान तो हकीम अलीकबीर है जो बात-बात पर दरवाज़े के हौज़ में अपने को पाक रखने केलिए नहाते रहते हैं"[5]

'आधा गाँव' उपन्यास में गंगौली गाँव के रीति-रिवाज़ आचार-अनुष्ठान आदि का विस्तृत वर्णन है। शादी-ब्याह के संदर्भ में किए जानेवाले विभिन्न अनुष्ठान, उस अवसर पर गाये जानेवाले विभिन्न गीत, खेल, तमाशा आदि बातों के वर्णन के द्वारा रज़ा ने गंगौली के लोकजीवन का असली रूप पाठकों के सामने रखा है।

गाँव के निवासी एक तरफ अशिक्षित हैं, दूसरी तरफ अज्ञानी भी। गाँव के बाहर की दुनिया से वे अनभिज्ञ हैं। गंगौली गाँव की जनता भी इसी प्रकार के है।

"मियाँ लोगों के ख्याल में दुनिया गाजीपुर की कचहरी के बाद खत्म हो जाती है।, इसलिए उन्हें नहीं मालूम था कि दुनिया में क्या हो रहा है और क्या नहीं हो रहा है"।[6]

आंचलिक उपन्यास में भाषा का विशेष महत्व है। जिस अंचल को लेकर उपन्यास लिखते हैं शर्त है कि भाषा उसी अंचल की हो। 'आधा गाँव' उपन्यास में रज़ा ने गंगौली की बोली 'भोजपुरी' को लिया है। असल में इस बोली से साधारण पाठक अनभिज्ञ हैं, किन्तु गाँव को उसकी संपूर्णता में उतारने केलिए रज़ा ने इस बोली का प्रयोग किया है।

इसलिए ही उपन्यास के सभी पात्र सहज स्वाभाविक और जीवन्त होकर पाठक के मन में पैठ जाते हैं । भाषा में उन्होंने श्लील-अश्लील का कोई ध्यान नहीं दिया है। गालियों का खुला प्रयोग किया है। 'हरामजाद', 'साली', 'मादरजाद' जैसी गालियाँ

उपन्यास में कई जगहों पर दिखाई पड़ती हैं।

निष्कर्ष रूप से कहेंगे तो 'आधा गाँव' गंगौली गाँव के आधे हिस्से की कहानी है। एक आंचलिक उपन्यास के रूप में यह उपन्यास पूर्णतः सफल है। क्योंकि गंगौली गाँव को, वहाँ के लोकजीवन को रोचक ढंग से पाठक तक पहुँचाने का स्तुत्य कार्य इसमें किया गया है।

आधार ग्रंथ:

1. आधा गाँव: डॉ.राही मासूम रज़ा: पृष्ठ संख्या-302, राजकमल प्रकाशन, 1966

संदर्भ:

1. वही, पृष्ठ संख्या:-303
2. वही, पृष्ठ संख्या:- 115
3. वही, पृष्ठ संख्या:- 18
4. वही, पृष्ठ संख्या:-181
5. वही, पृष्ठ संख्या:- 71

◆ असोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, महाराजास कॉलेज,
एरणाकुलम जिला, केरल राज्य।
फोन : 6238615803

दलित विमर्श-एक विचार

◆ **डॉ. देवप्रकाश मिश्र**

दलित चिंतक और लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि की "ठाकुर का कुआं" कविता की ये पंक्तियाँ दलित विमर्श की उसे चिंतन परंपरा को आगे बढ़ाती हैं जिसकी वेदना हमें अंबेडकर के चिंतन-दर्शन में मिलती है।

"रोटी बाजरे की
बाजरा खेत का
खेत ठाकुर का।
बैल ठाकुर का
हल ठाकुर का
हल की मूठ पर हथेली अपनी
फ़सल ठाकुर की।
कुआँ ठाकुर का
पानी ठाकुर का
खेत-खलिहान ठाकुर के
गली-मुहल्ले ठाकुर के
फिर अपना क्या?
गाँव? शहर? देश?"[1]

दलित साहित्य भारतीय चिंतन परंपरा की अंतर्वेदना की कथा यात्रा है जो मूल रूप से बाबा साहब अंबेडकर की चिंतन धारा को व्याख्यायित करता है। विभिन्न भारतीय भाषाओं में दलित की पीड़ा, चिंतन एवं उसकी यातना को साहित्य के विभिन्न रूपों में कथा, कहानी, कविता संस्मरण आदि में अभिव्यक्त किया गया है। इसकी मूल संवेदना यह है की दलित समुदाय की अनुभूति को दलित व्यक्ति ही सत्य अनुभूति के रूप में अभिव्यक्त कर सकता है। यहाँ विचारणीय मुद्दा यह है कि गैर दलित द्वारा दलित चिंतन पर रचित रचनाएँ कितनी प्रामाणिक एवं यथार्थ मानी जा सकती हैं? साहित्यिक परंपरा को उठाकर देखें तो प्रेमचंद द्वारा रचित कहानी "कफन" की स्थिति विचारणीय है, भारतीय साहित्य में ऐसे उदाहरण अनेक मिल जाएँगे जो कि गैर दलित लेखकों के द्वारा लिखा गया है और दलित चिंतन की समस्या को गहनता से उठाया भी गया है। इस प्रकार की अनेक समस्याएँ दलित चिंतन या दलित विमर्श को पुनर्विचार करने हेतु आकर्षित करती हैं। निस्संदेह दलित विमर्श के आलोक में गैर दलितों द्वारा दलित पीड़ा पर रचित रचनाओं को दलित विमर्श के दायरे से बाहर करना पड़ेगा, जो कि न्याय संगत नहीं जान पड़ता।

दलित साहित्य भारतीय लेखन की एक ऐसी

सशक्त और प्रभावशाली धारा है जो दलित समुदाय की अनसुनी आवाज़ों, उनके जीवन के कटु अनुभवों और उनकी असमानता के विरुद्ध संघर्ष को उजागर करता है। सदियों से जाति व्यवस्था के कठोर बंधनों में जकड़े इस समुदाय ने जिस तरह से सामाजिक बहिष्कार, उत्पीड़न और अपमान का सामना किया है, उसी का एक आक्रोशपूर्ण चित्रण दलित साहित्य के माध्यम से होता है। दलित शब्द केवल एक पहचान नहीं, बल्कि एक क्रांतिकारी घोषणा है । यह साहित्य एक सामाजिक चेतना का उद्घोष है, जहाँ लेखक अपने आत्मसम्मान, धैर्य और समानता के अधिकार को अड़िग विश्वास के साथ स्थापित करते हैं। दलित साहित्य मराठी, हिंदी, कन्नड़, तमिल और अन्य भारतीय भाषाओं में लिखा जाता है, और इसके अंतर्गत कविता, लघु कथाएँ, उपन्यास, आत्मकथाएँ जैसे विविध साहित्यिक रूप सम्मिलित हैं। इस साहित्य का उद्देश्य केवल उत्पीड़न और सामाजिक अन्याय की भयावह सच्चाई को सामने लाना नहीं है, बल्कि उन असमानताओं के ढाँचों को चुनौती देना है जो इसे पीढ़ियों से बनाए हुए हैं। यह साहित्य एक प्रकार से सामाजिक न्याय और सशक्तीकरण की दिशा में एक क्रांति का संदेश देता है। दलित साहित्य के प्रमुख विषयों में गरीबी, सामाजिक बहिष्कार, हिंसा, और जातिगत भेदभाव से उत्पन्न मानसिक आघात शामिल हैं। इसकी भाषा में एक कच्चापन और एक सीधेपन का तत्व है जो यथार्थ को बिना किसी आडंबर के प्रस्तुत करता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की जूठन और बामा की करुक्कू जैसी आत्मकथाएँ दलित समुदाय की पीड़ा, उनके संघर्ष और उनके साहस की व्यक्तिगत झलक देती हैं। दलित कविताओं में क्रोध, आशा और विद्रोह का स्वर प्रकट होता है, जो स्वतंत्रता और सम्मान के अधिकार के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को अभिव्यक्त करता है। भारतीय साहित्य में दलित साहित्य एक परिवर्तनकारी शक्ति के रूप में उभरा है।

इसने न केवल एक लम्बे समय से खामोश रहे समाज को आवाज़ दी, बल्कि जाति, पहचान और न्याय जैसे मुद्दों पर सामाजिक विमर्श को नए दृष्टिकोण दिए हैं। दलित साहित्य की यह धारा अपनी सच्चाई, साहस और संघर्ष की गाथा के माध्यम से न केवल भारतीय समाज के प्रति, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी मानवीय गरिमा के प्रति सजग बनाती है।

दलित आंदोलन भारत में एक महत्वपूर्ण सामाजिक आंदोलन है, जो कठोर, दमनकारी जाति पदानुक्रम को खत्म करने और स्वतंत्रता, समानता और सामाजिक न्याय जैसे लोकतांत्रिक सिद्धांतों पर आधारित समाज की स्थापना करने की इच्छा से प्रेरित है। दलित समुदाय के अनुभवों में निहित, जिसने जाति व्यवस्था के तहत व्यवस्थित बहिष्कार और भेदभाव का सामना किया है, आंदोलन सामाजिक संरचनाओं को बदलने और जाति की परवाह किए बिना सभी के लिए मानवीय सम्मान और समान व्यवहार को बढ़ावा देने का प्रयास करता है। यह आंदोलन विशेष रूप से 20वीं सदी में एक शक्तिशाली ताकत के रूप में उभरा, जिसमें डॉ. बी.आर. अंबेडकर जैसे नेता शामिल थे, जिन्होंने दलितों के अधिकारों की वकालत की और जाति-आधारित भेदभाव से मुक्त एक समावेशी भारत की कल्पना की। दलितों को उनके अधिकारों का दावा करने, शिक्षा प्राप्त करने और सामाजिक मानदंडों को चुनौती देने के लिए प्रोत्साहित करके, आंदोलन का उद्देश्य उन्हें सशक्त बनाना और समान स्तर पर अवसरों तक पहुँच सुनिश्चित करना है। यह जाति-आधारित भेदभाव को रोकने के लिए नीतिगत बदलाव, कानूनी सुरक्षा और सामाजिक जागरूकता का भी आह्वान करता है। दलित आंदोलन राजनीतिक सक्रियता से आगे बढ़ गया है, साहित्य, कला और शिक्षा को प्रभावित कर रहा है और व्यापक सामाजिक परिवर्तनों में योगदान दे रहा है। सामाजिक न्याय और समान व्यवहार पर ज़ोर

भारत के संवैधानिक सिद्धांतों के अनुरूप है, जिसका उद्देश्य बहिष्कारवादी व्यवस्था को एक सच्चे लोकतांत्रिक समाज द्वारा प्रतिस्थापित करना है।

सन् 1947 में, डॉ. बी.आर. अंबेडकर को संविधान सभा की प्रारूप समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया गया, इस भूमिका में उन्होंने अपने कुछ पुराने क्रांतिकारी विचारों को संशोधित करके एक ऐसा संविधान तैयार किया जो हाशिए पर पड़े समुदायों के लिए सामाजिक समानता सुनिश्चित करेगा। उनके योगदान में अनुसूचित जातियों (अंग्रेज़ों द्वारा अछूतों के लिए शुरू में इस्तेमाल किया जाने वाला शब्द) को सशक्त बनाने के उद्देश्य से विशेष संवैधानिक प्रावधानों को शामिल करना शामिल था। संविधान के प्रमुख अनुच्छेद उनकी दृष्टि को दर्शाते हैं: अनुच्छेद 17 ने अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया, जबकि अनुच्छेद 15 और 46 ने समाज के "कमज़ोर वर्गों" के लिए शैक्षिक और आर्थिक लाभों को प्राथमिकता देते हुए सकारात्मक कार्रवाई का आधार प्रदान किया। इसके अतिरिक्त, 1955 के अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम ने अस्पृश्यता के आधार पर भेदभाव को दंडनीय अपराध बना दिया।

संदर्भ -

1 पुस्तक : दलित निर्वाचित कविताएँ, पृष्ठ 56, संपादक : कँवल भारती, रचनाकार : ओमप्रकाश वाल्मीकि, इतिहासबोध प्रकाशन संस्करण, संस्करण 2006

◆हिंदी विभाग
आर्यभट्ट महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली।

प्राचीन भारत में श्रेणी व्यवस्था: स्वरूप तथा दायित्व

◆संतोष कुमार पाण्डेय

शोध सारांश:-

प्राचीन भारत में समतुल्य शिल्पियों तथा व्यवसायियों ने अपने व्यवसाय के हित, उत्थान व सुरक्षा के लिए संगठन बनाए। शिल्पियों तथा व्यापारियों के इसी संगठन को श्रेणी/निगम जबकि इसके प्रधान को जेष्ठक (जेट्ठक) अथवा श्रेष्ठि (सेट्ठि) के नाम से जाना गया। ये राजा को सुचारु ढंग से शासन संचालन में पूर्ण सहयोग करते, उसे नियमित कर देते तथा संकट काल में ऋण के साथ-साथ सैनिक सहयोग भी प्रदान करते थे। राजा भी इन श्रेणियों के महत्वपूर्ण प्रतिनिधियों को अपने राज्य में प्रशासनिक पदों पर नियुक्त करते थे। आर्थिक दृष्टि से ये श्रेणियाँ अत्यधिक समृद्ध थीं। ये देश एवं समाज के हित में अनेक प्रकार के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सराजनीतिक, न्यायिक तथा जनकल्याणकारी कार्य भी किया करते थे। ये अपने सदस्यों के लिए स्वयं नियम-कानून बनाते थे, श्रेणी का प्रत्येक सदस्य उसका पालन करता था। नियम की अवहेलना करनेवाले सदस्य को ये दण्डित भी करते थे तथा कभी-कभी उसे निष्कासित कर देते थे। राजा भी इनके नियमों का सम्मान करता था तथा सामान्य परिस्थिति में उसमें हस्तक्षेप नहीं करता था।

मुख्य शब्द:- श्रेणी, श्रेष्ठि, शिल्पी, व्यवसाय, व्यापारी या व्यवसायी, राजा, समिति, सदस्य, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, न्यायिक, सैनिक तथा जनकल्याणकारी कार्य।

प्राचीन काल में श्रेणियों का महत्वपूर्ण स्थान था। ये संघ, पूग, कुल, जाति, निकाय, समूह, व्रात, समुदाय, वर्ग, सार्थ, निगम, सम्भुय-समुत्थान जैसे कई अन्य नामों से भी जानी जाती थीं। जब उद्योग तथा

व्यापार में संलग्न व्यक्ति अपने हितों की रक्षा के लिए एक संस्था/संगठन बना लेते थे तो उसे श्रेणी या निगम कहा जाता था।[1] श्रेणी के प्रमुख को जेट्ठक कहा जाता था। ऋग्वेद से पता चलता है कि श्रेणियाँ हंसों की तरह एक समूह में कार्य करती थीं।[2] ऋग्वेद में प्राणि नामक व्यापारियों का उल्लेख प्राप्त होता है, जो सुरक्षा के निमित्त समूह में व्यापार के लिए जाया करती थी। वैदिक साहित्य में अनेक स्थानों पर श्रेष्ठि तथा गण जैसे शब्दों का भी वर्णन प्राप्त होता है, अतः निश्चित रूप से इस प्रकार की व्यापारिक संस्थाएँ पूर्व वैदिक युग तक अस्तित्व में आ चुकी थीं। भारत की प्राचीन सिन्धु सभ्यता में मूर्तिकार, कुम्भकार, रंगाई-पुताई करने वाले कलाकारों के बारे में जानकारी तो प्राप्त होती है, लेकिन इनसे सम्बन्धित कोई संगठित समूह की जानकारी प्राप्त नहीं होती है। अतः उस समय में इस प्रकार के समूह या तो अस्तित्व में नहीं थे या फिर कम महत्व के थे। ई. पूर्व छठी शताब्दी में व्यापार-वाणिज्य की प्रगति हुई अब लोगों को अपने कार्य को सुचारु ढंग से सम्पन्न करने एवं सामाजिक सुरक्षा तथा अपने अधिकारों की रक्षा के लिए एक संगठन की आवश्यकता हुई। धीरे-धीरे ये श्रेणियाँ समाज में इतनी महत्वपूर्ण हो गईं कि वे राज्य का अनिवार्य अंग प्रतीत होने लगीं, राजकीय जुलूसों में शामिल की जाने लगीं, अपना पृथक नियम-कानून भी बनाने लगीं, राजा भी इनके आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप नहीं करते थे। इनके द्वारा बनाए गए नियम को लागू करने लगा तथा इनका उल्लंघन करने वाले को दण्डित भी करता था। समय के साथ में श्रेणियाँ अपनी सेना भी रखने लगीं तथा आवश्यकता पड़ने पर राजा को ऋण तथा सैनिक सुविधा भी प्रदान करने लगीं।[3] विभिन्न ग्रन्थों से श्रेणियों, इनके स्वरूपों तथा संगठनों एवं इनके कार्यों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। महाभारत में श्रेणी का प्रयोग व्यापारियों के संगठन के अर्थ में हुआ है।[4] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में शिल्पकारों के समूह को श्रेणी की संज्ञा दी गयी।[5] पाणिनी महोदय ने शिल्पकारों के समूह को श्रेणी कहा।[6] विज्ञानेश्वर की 'मिताक्षरा' के, अनुसार भिन्न-भिन्न जाति के लोगों का संगठन 'श्रेणी' कहलाता था जो अपनी किसी एक वस्तु का व्यापार करता था।[7] 'वीरमित्रोदय' में एक शिल्प पर जीवन-यापन करने वाले भिन्न-भिन्न शिल्पों के समूह/संगठन को श्रेणी कहा गया।[8] मजूमदार महोदय ने विभिन्न जातियों के परन्तु समान प्रकार का व्यवसाय व उद्योग धन्धों में संलग्न लोगों के संगठन को श्रेणी की संज्ञा दी। श्रेणी को 'पूग' भी कहा जाता था। पूग शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 'कोषितकी ब्राह्मण' में हुआ, यहाँ पर रुद्र (शिव) को पूग कहा गया।[9] 'कात्यायन स्मृति' में व्यापारियों के समूह को पूग कहा गया।[10] 'वीरमित्रोदय' में हाथी तथा घोड़े पर सवार होनेवाले लोगों के संघ को पूग कहा गया।[11] मिताक्षरा में भिन्न-भिन्न वृत्तियों को अपनाकर एक ही ग्राम/नगर में निवास करने वाले भिन्न-भिन्न जातियों के लोगों का वर्ग पूग कहा गया।[12] अतः पूग/श्रेणी नामक संस्थाएँ एक ही ग्राम/नगर में निवास करती थीं तथा अपने हितों की रक्षा करती थीं। ये जाति-पाँति तथा ऊँच-नीच की भावना से मुक्त थीं। बौद्ध साहित्य में 18 प्रकार की श्रेणियों का उल्लेख मिलता है।[13] इन श्रेणियों में महाजनों की श्रेणियाँ सर्वाधिक महत्वपूर्ण थीं, ये नगरों में निवास करती थीं। इन्हें सेठी कहा जाता था। 'जातकों' में राजा, बढ़ई, लुहार, स्वर्णकार (सोना, चांदी आदि धातु का काम करने वाले), बँसकर (बाँस का काम करनेवाले), पत्थर का काम करने वाले, चर्मकार, हाथीदाँत का काम करनेवाले, जुलाहे, कुम्भकार, तेली, टोकरी बनाने वाले, रंगाई-पुताई करनेवाले, चित्रकार, धान के व्यापारी, मछुआरे, कसाई, नाई, माली, मल्लाह, सार्थवाहक, डाकू, लुटेरे तथा महाजनों की श्रेणी का वर्णन प्राप्त होता है।[14] जातक ग्रन्थों के अध्ययन से पता चलता है कि व्यापारियों की

तुलना में शिल्पियों का संगठन अधिक विकसित था, क्योंकि वे पैतृक व्यवसाय का ही अनुसरण करते थे। शिल्पियों के नाम पर अलग-अलग सड़कें, गलियाँ व गाँव भी थे। उदाहरण के लिए धोबी तथा रंगसाज धोबी गली में, कपड़ा बुनने वाले जुलाहा गली में, फूलों का व्यापार करने वाले माली गली में, हाथी दांत का काम करनेवाले हाथी दांत बाज़ार में, समृद्धवाणी जातक से बनारस के निकट एक हज़ार बढ़ईयों के परिवार दो प्रधान शिल्पियों के अन्तर्गत निवास करने की जानकारी प्राप्त होती है।[15] 'सुचिजातक' में एक हज़ार लुहारों के परिवार का एक प्रधान लुहार के अन्तर्गत रहने की जानकारी मिलती है। जातक ग्रन्थों में एक गाँव के 1000 बढ़ई परिवार का उस गाँव को छोड़कर एक द्वीप पर जाकर बस जाने की जानकारी मिलती है। अतः स्पष्ट है कि अलग-अलग शिल्पी अलग-अलग गाँव में रहकर अपने कार्य करते थे तथा आवश्यकता पड़ने पर वे उस स्थान को छोड़कर कहीं अन्यत्र जाकर बस सकते थे। श्रेणी के प्रमुख को जेष्ठक (जेट्ठक) सेट्ठि/श्रेष्ठि की संज्ञा दी गई, इनका पद वंशानुगत होता था, इनको प्रायः राजा उच्च पदों पर नियुक्त किया करते थे तथा समाज में भी इनका सम्मानित स्थान था। आर्थिक दृष्टि से भी ये काफी सम्पन्न हुआ करते थे, जातक ग्रन्थों में 80 करोड़ की सम्पत्तिवाले श्रेष्ठि का वर्णन प्राप्त होता है। इस समय अनाथपिण्डक नामक श्रेष्ठि ने महात्मा बुद्ध के सम्मान में श्रावस्ती स्थित जेतवन उद्यान को 18 करोड़ का दान भी दिया था।

श्रेणी के कार्य:-

श्रेणियाँ आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक समृद्ध थीं, ये विविध प्रकार के आर्थिक कार्य, लोक कल्याणकारी कार्य, धार्मिक कार्य, सैनिक कार्य, वैधानिक तथा न्यायिक कार्य भी किया करती थीं। इसके साथ-साथ विपत्ति/संकट के समय राजा को ऋण देने के साथ-साथ सैनिक सहयोग भी दिया करती थीं।

आर्थिक कार्य:-

श्रेणियाँ आधुनिक बैकों की तरह कार्य करती थीं, ये लोगों को उधार देने तथा ब्याज के साथ उसे वसूल करने का भी कार्य करती थीं। इस ब्याज का प्रयोग जनकल्याणकारी कार्यों में होता था, कालिदास की 'कुमारसंभवम्' तथा 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में श्रेणियों के आर्थिक क्रियाकलापों का उल्लेख प्राप्त होता है। तृतीय शताब्दी के एक अभिलेख से जानकारी प्राप्त होती है कि श्रेणियों ने ब्याज से प्राप्त धन का प्रयोग करके संघाराम में निवास करनेवाले रोगियों के उपचार का प्रबन्ध कराया। श्रेणियाँ राजकीय भूमि की देखभाल भी करती थीं, बाज़ार के क्रय-विक्रय मूल्य पर भी नज़र रखती थीं तथा अधिक लाभ प्राप्त करनेवाले पर नियन्त्रण रखती थी। अर्थशास्त्र में ऐसे अनेक व्यापारियों का वर्णन प्राप्त होता है जो वस्तुओं का मूल्य उत्कर्ष तथा अपकर्ष कराकर शत प्रतिशत लाभ प्राप्त करते थे।[16] अपने लाभ के लिए वस्तुओं का मूल्य घटाने तथा बढ़ाने की यह प्रवृत्ति आधुनिक काल के व्यापारियों में प्रायः पायी जाती है। श्रेणियाँ अपनी मुद्राओं तथा मुहरों का भी प्रचलन करवाती थीं। उदाहरण के लिए- इलाहाबाद के पास भीटा नामक स्थल से जान मार्शल को एक मोहर-निर्माण करने का साँचा प्राप्त हुआ। तक्षशिला से प्राप्त एक मुद्रा पर नैगम उत्कीर्ण है जो तीसरी शताब्दी ई. का है। कुषाण काल की 4 मुद्राएँ भी प्राप्त हुईं। वैशाली (बसाढ़) से गुप्तकाल की 274 मुहरें प्राप्त हुई हैं।

लोक कल्याणकारी कार्य:-

श्रेणियाँ आर्थिक दृष्टि से समृद्ध होने के अतिरिक्त परोपकारी भी होती थीं। ये कई प्रकार के लोककल्याणकारी कार्य भी किया करती थीं। बृहस्पति स्मृति से इनके द्वारा यात्रियों के लिए विश्रामगृह का निर्माण करवाने, मन्दिर का निर्माण करवाने, उद्यान लगवाने, सरोवर खुदवाने का वर्णन प्राप्त होता है। ये अकाल के समय पीड़ित व्यक्तियों की सहायता भी करती थीं।[17] मन्दसौर अभिलेख में अन्न विक्रेताओं की श्रेणी द्वारा हौज निर्माण करवाने का वर्णन मिलता है।

धार्मिक कार्य:-

श्रेणियों ने हिन्दू, बौद्ध तथा जैन धर्मों से सम्बन्धित कई देवी-देवताओं की मूर्तियों तथा उनके मन्दिरों का निर्माण, पुननिर्माण एवं दान देने के भी कार्य किये। सांची स्तूप से जानकारी प्राप्त होती है कि शिल्पकारों एवं महाजनों ने ई. पूर्व तीसरी शती से प्रथम शती तक कई उपहार दिए, कन्हेरी की गुफाओं के अभिलेख में अनाज के व्यापारियों द्वारा एक कुण्ड का पान व एक गुफा निर्माण का वर्णन है। गुप्त सम्राट कुमारगुप्त तथा उनके औलिकर वंशी सामन्त बंधुवर्मन के समय के मन्दसौर अभिलेख में रेशम बुनकरों की श्रेणी द्वारा सूर्य मन्दिर का निर्माण तथा कुछ समय बाद उसके पुनःनिर्माण का भी उल्लेख मिलता है। ग्वालियर अभिलेख से मन्दिर के लिए तैलिक श्रेणी द्वारा तेल एवं मालिक श्रेणी द्वारा माला प्रदान करने का वर्णन प्राप्त होता है।[18]

सैनिक कार्य:-

विविध भारतीय ग्रन्थों से श्रेणियों के सैनिक कार्यों का वर्णन मिलता है।[19] कम्बोज तथा सोराष्ट्र प्रदेशों में क्षत्रियों की श्रेणी का उल्लेख है, जो खेती, व्यापार तथा युद्ध करके जीविका चलाती थी। मन्दसौर अभिलेख से जानकारी प्राप्त होती है कि रेशम बुनकरों की श्रेणी ने धनुर्विद्या में पारंगत होकर योद्धा के रूप में सम्मानित स्थान प्राप्त किया था।[20] डॉ. भण्डारकर, रामचन्द्र मजूमदार महोदय ने इन्हें कोई न कोई व्यवसाय एवं युद्ध विषयक कार्य करनेवाला कहा है तथा इनके द्वारा प्रतिपादित सैनिक कार्यों का भी वर्णन किया है। अतः हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि श्रेणियाँ अपनी सेना भी रखती थीं, राजा आवश्यकता पड़ने पर इनका उपयोग कर सकते थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अनेक ऐसी श्रेणियों का वर्णन है जो व्यापार तथा युद्ध करके अपना जीवन यापन करती थीं।

वैधानिक तथा न्यायिक कार्य:-

श्रेणियों के कर्तव्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे। श्रेणियाँ वे ही नियम बनाती थीं जो देश तथा समाज के उत्थान के लिए आवश्यक थे। इस नियम का उल्लंघन करना राजद्रोह था। श्रेणियाँ अपने प्रतिनिधियों के द्वारा न्यायिक कार्य करती थीं। इसके सदस्य कार्य निपुण, सत्यनिष्ठ, कर्त्तव्यनिष्ठ, योग्य तथा उच्च कुल के होते थे।[21] जो सदस्य सक्षम होते हुए भी अपने कार्य को सुव्यवस्थित ढंग से नहीं करता था उसे श्रेणी से निष्कासित कर दिया जाता था। इसके सदस्य स्वेच्छा से त्यागपत्र भी दे सकते थे।[22] नारद स्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति तथा बृहस्पति स्मृति से श्रेणियों के न्यायिक कार्यों की जानकारी प्राप्त होती है। नारद, याज्ञवल्क्य के अनुसार श्रेणी न्यायालय का स्थान 4 प्रमुख न्यायालयों (कुल, श्रेणी, गज, राजा नामक न्यायालय) में द्वितीय स्थान पर था।[23] दामोदरपुर ताम्रपात्र (433-438 ।क्) से भी इनके न्यायिक कार्यों का वर्णन प्राप्त होता है, परन्तु इनका न्यायिक कार्य इनके सदस्यों तक ही सीमित था।[24] जातक साहित्य से यह पता चलता है कि श्रेणियाँ वैधानिक शक्ति के रूप में कार्य करती थीं। गौतम, याज्ञवल्क्य, नारद तथा विष्णु स्मृतियों में बताया गया कि राजा को श्रेणियों द्वारा निर्मित नियमों को लागू करना चाहिए तथा इनका उल्लंघन करने वाले को दण्डित करना चाहिए।[25]

निष्कर्ष:-

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्राचीन काल में श्रेणियाँ अत्यन्त सुदृढ़ सुव्यवस्थित एवं शक्तिशाली संस्थाएँ थीं। आर्थिक दृष्टि से इनकी स्थिति अत्यन्त समृद्ध थी। इसलिए इन्होंने विभिन्न प्रकार के सामाजिक तथा धार्मिक कार्य किए जो समय, काल, परिस्थितियों के अनुसार देश व समाज के हित में थे। इन्होंने जहाँ एक तरफ हिन्दू, बौद्ध, जैन धर्मों से सम्बन्धित देवताओं तथा इनसे सम्बन्धित मन्दिर, मठ, विहार का निर्माण तथा जीर्णोद्धार करवाया, उसे समय-समय पर दान भी दिया वहीं दूसरी तरफ आवश्यकता पड़ने पर राजा को भी ऋण प्रदान किया, सैनिक सहयोग दिया तथा राजकीय भूमि की देखभाल की। अतः निश्चित तौर पर यह उच्च तथा

समृद्ध व्यापारिक संघ भी था जिसका प्रभाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में देखने को मिलता है।

सन्दर्भ:-

1. ओम प्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास; न्यू एज पब्लिशेर्स, दिल्ली 2016; पृ.184
2. हंसा इव श्रेयिशोयतन्ते। ऋग्वेद, 1.163.10
3. शामशास्त्री, पृ0 305, 376
4. महाभारत, वनपर्व, 249-76
5. एकेन शिल्पेन पण्येन वा ये जीविन्त तेषां समूह श्रेणी, अर्थशास्त्र, 5.2
6. श्रेणयः कृतादिभिः, अष्टाध्यायी 2.1.5.9
7. एकपण्यं शिल्पोप जीविनः श्रेणयः। मित्राक्षरा, 2.192
8. श्रेण्यः एकाशिल्पोपजीविनः। तास्विदमनयैव श्रेण्या विक्रये-मित्येवमादिकाः समाया वरीवर्तन्ते।। वीरमित्रोदय, 7.333
9. रूद्रौं वै पूगः। कौशितिकी ब्राह्मण, 16.7
10.समूहो वणिजादीनां पूगः संपरिकीर्तितः। कात्यायान, 84
11पूगाः हस्त्यश्वारोहादयः। वीरमित्रोदय, 7.333
12. पूगाः वर्ग समूहाः भिन्न जीतानां भिन्न वृत्तानामेक-स्थान निवासिनां यथा ग्राम नगरादयः। मित्राक्षरा।
13. जातक जिल्द-4, पृ. 411
14. नासिक अभिलेख लूडर्स 1133, 1137
15. समृद्धवणिजातक पृ. 466, ओम प्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, पृ.185
16. ओम प्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, पृ.187
17.वृहस्पति, 17.11-12, वीरमित्रोदय पृ. 423-24
18. एपि इं., 1.159, 3.80
19. रामायण, 2.123.5, याज्ञवल्क्य, 2.30, वृहस्पति 1.28-30, अर्थशास्त्र पृ. 3.40, 376
20. कार्पस इंस्क्रिप्शनम् इण्डिकेरम, पृ. 80
21. विवेषिणो व्यसनिनः भीखः। तब्धगति वृद्धबालाश्च न कार्यः कार्यचिन्तकाः।। वृहस्पति स्मृति 17.8
22. वीरमित्रोदय, पृ. 432
23. नारद स्मृति, 1.7
24. विनयटेकस्टस 4.226
25. गौतम धर्मसूत्र, 11.20, याज्ञवल्क्य, 2.187-190

◆ शोध छात्र,
प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग,
तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय,जौनपुर (उ.प्र.)।
सम्बद्ध:वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल
विश्वविद्यालय,जौनपुर (उ.प्र.)।

भारत में महिलाओं के मानवाधिकार और लैंगिक समानता का विश्लेषण

◆करुणा गौतम[1] ,प्रो.(डॉ.) संगीता माथुर [2]

सार :इस शोध आलेख में, दो लेखों का विश्लेषण किया गया है जो भारत में महिलाओं के मानवाधिकार और लैंगिक समानता से जुड़े हैं। पहला लेख घरेलू श्रमिकों की विशिष्ट समस्याओं पर केंद्रित है और अंतर्विभागीय दृष्टिकोण से उनके अनुभवों का विश्लेषण करता है। दूसरा लेख व्यापक रूप से लैंगिक असमानताओं और मानवाधिकारों के मुद्दों की समीक्षा करता है। दोनों लेख कानूनी सुधार और सामाजिक जागरूकता की आवश्यकता पर जोर देते हैं ताकि महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके।

बीज शब्द: मानवाधिकार, लैंगिक समानता, घरेलू श्रमिक, कानूनी सुधार, सामाजिक जागरूकता।

परिचय

भारत में महिलाओं के मानवाधिकार और

लैंगिक समानता एक व्यापक और महत्वपूर्ण विषय है, जो देश के सामाजिक, आर्थिक और कानूनी ढांचे से गहराई से जुड़ा हुआ है। इन मुद्दों पर काम करनेवाले विशेषज्ञ और विद्वान विभिन्न दृष्टिकोणों से इस परिदृश्य को समझने का प्रयास करते हैं। इस संदर्भ में, दो प्रमुख लेखों का विश्लेषण किया गया है: "डिग्निटी एंड ह्यूमन राइट्स वोइलेशन एट द वर्क प्लेस :इंटरसेक्शनल वुल्नेराबिलिटी ऑफ़ वीमेन डोमेस्टिक वर्कर्स इन इंडिया" (2023) और "जेंडर इक्वलिटी एंड ह्यूमन राइट्स इन इंडिया : इश्यूज एंड पर्सपेक्टिव्स"।

पहला लेख, करुणाकरण प्रसन्ना चित्रा और अन्य द्वारा लिखा गया है, जो घरेलू महिला श्रमिकों की कठिनाइयों और उनके मानवाधिकारों के उल्लंघन पर केंद्रित है। यह लेख इस बात का परिक्षण करता है कि कैसे लिंग, वर्ग और जाति जैसी संरचनात्मक असमानताएँ इन महिलाओं की परिस्थितियों को और अधिक जटिल बनाती हैं। इसके विपरीत, डेज़ी ठाकुर का दूसरा लेख भारत में महिलाओं की स्थिति और लैंगिक समानता के व्यापक मुद्दों को समझने का प्रयास करता है। यह लेख सामाजिक और कानूनी बाधाओं पर ध्यान केंद्रित करता है, जो महिलाओं के मानवाधिकारों की प्राप्ति में बाधा डालती हैं।

लेख 1: " डिग्निटी एंड ह्यूमन राइट्स वोइलेशनएट द वर्क प्लेस : इंटरसेक्शनल वुल्नेराबिलिटी ऑफ़ वीमेन डोमेस्टिक वर्कर्स इन इंडिया " (2023)

यह लेख करुणाकरण प्रसन्ना चित्रा, दिवाकर भट लेखा, बेविंजे सुब्ब्यमूला सुमलथा और मोलन जोसेफ सैंड्रा द्वारा लिखित है। लेख में घरेलू श्रमिकों, विशेष रूप से महिलाओं की, कार्यस्थल पर अनुभव की जाने वाली कमज़ोरियों और मानवाधिकारों के उल्लंघन का गहन अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। लेख का प्रमुख केंद्रबिंदु महिलाओं की गरिमा और उनके अधिकारों की सुरक्षा पर है। इसमें बताया गया है कि कैसे लिंग, वर्ग और जाति जैसे सामाजिक संरचनात्मक कारण इन महिलाओं की स्थिति को और भी जटिल बना देते हैं। लेख के अनुसार, भारत में घरेलू श्रमिकों के लिए मौजूदा कानूनी प्रावधान उनकी सुरक्षा के लिए पर्याप्त नहीं हैं, और इसलिए अधिक व्यापक और संरचित कानूनी सुधारों की आवश्यकता है।

लेख में यह भी उल्लेख किया गया है कि घरेलू महिला श्रमिकों को अक्सर कार्यस्थल पर उत्पीड़न और दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ता है। इनके अधिकारों की उपेक्षा की जाती है, जिससे उनकी गरिमा पर गहरा प्रभाव पड़ता है। लेख की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह विशिष्ट मामलों का अध्ययन करता है, जो कि घरेलू कार्यक्षेत्र में महिलाओं के जीवन की जटिलताओं और संघर्षों को उजागर करने के लिए एक केस-विशिष्ट दृष्टिकोण अपनाता है।

लेख 2: "जेंडर इक्वलिटी एंड ह्यूमन राइट्स इन इंडिया : इश्यूज एंड पर्सपेक्टिव्स "(2023)

डेज़ी ठाकुर का यह लेख भारत में महिलाओं की स्थिति और लैंगिक समानता के व्यापक मुद्दों पर केंद्रित है। यह लेख समाज के विभिन्न क्षेत्रों, जैसे- शिक्षा, रोज़गार और स्वास्थ्य सम्बन्धी महिलाओं के साथ हो रहे भेदभाव और असमानता को उजागर करता है। ठाकुर ने अपने लेख में इस बात पर बल दिया है कि भारत में महिलाओं के मानवाधिकारों की सुरक्षा और लैंगिक समानता सुनिश्चित करने के लिए मौजूदा कानूनों और नीतियों को और अधिक सशक्त और प्रभावी बनाने की आवश्यकता है। लेख एक सैद्धांतिक दृष्टिकोण प्रदान करता है और भारत में लैंगिक समानता और मानवाधिकारों की स्थिति का व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

इस लेख का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह सामाजिक और कानूनी बाधाओं पर ध्यान केंद्रित करता है, जो कि महिलाओं के साथ होने वाले भेदभाव को और अधिक बढ़ावा देती हैं। लेख में यह भी बताया गया है कि लैंगिक समानता को हासिल करने के लिए समाज में मौजूदा पूर्वाग्रहों को दूर करना अत्यंत आवश्यक है। ठाकुर का दृष्टिकोण

व्यापक है और यह भारत में लैंगिक समानता के मुद्दों का एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है, जो विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा की दिशा में उठाए गए कदमों की समीक्षा करता है।

भारत में घरेलू महिला श्रमिकों के अधिकार और चुनौतियाँ

भारत में घरेलू महिला श्रमिकों का जीवन अत्यधिक संघर्षपूर्ण है। ये महिलाएँ, जो परिवारों के घरों में काम करती हैं, अक्सर समाज के सबसे हाशिए पर रहने वाले वर्ग से आती हैं। इस स्थिति के कारण उन्हें कई प्रकार के शोषणों और भेदभावों का सामना करना पड़ता है। ये महिलाएँ अपने कार्यस्थलों पर अत्यधिक असुरक्षित होती हैं, और उनके अधिकारों का अक्सर उल्लंघन किया जाता है।

लेख "कार्यस्थल पर गरिमा और मानवाधिकारों का उल्लंघन: भारत में घरेलू महिला श्रमिकों की अंतर्विभागीय कमज़ोरियाँ"- इस बात को सामने लाता है कि इन महिलाओं के लिए सामाजिक और कानूनी ढांचे में कई कमियाँ हैं। यह लेख इस बात पर ज़ोर देता है कि घरेलू श्रमिकों के लिए कानूनी सुधारों की आवश्यकता है, जिससे उनके अधिकारों की सुरक्षा हो सके। घरेलू श्रमिकों की गरिमा और अधिकारों के लिए मज़बूत कानूनी ढांचा तैयार करना ज़रूरी है, ताकि ये महिलाएँ भी समाज में सम्मान और सुरक्षा के साथ रह सकें।

लैंगिक समानता और मानवाधिकारों की व्यापक दृष्टि

दूसरी ओर, देज़ी ठाकुर का लेख "भारत में लैंगिक समानता और मानवाधिकार: मुद्दे और दृष्टिकोण" व्यापक स्तर पर समाज में लैंगिक समानता की स्थिति का विश्लेषण करता है। इस लेख में शिक्षा, स्वास्थ्य, और रोज़गार जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में महिलाओं के साथ होने वाले भेदभाव की चर्चा की गई है। यह लेख सामाजिक और कानूनी बाधाओं की पहचान करता है, जो महिलाओं के मानवाधिकारों की प्राप्ति में अवरोध पैदा करती हैं।

ठाकुर का लेख इस बात पर भी ज़ोर देता है कि वर्तमान कानूनी और नीति संरचना में सुधार की आवश्यकता है, ताकि महिलाओं के अधिकारों को सुरक्षित किया जा सके और लैंगिक समानता को बढ़ावा दिया जा सके। यह लेख उन व्यापक सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तनों की आवश्यकता पर भी बल देता है, जो महिलाओं के अधिकारों और अवसरों को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हैं।

सामाजिक और कानूनी बाधाएँ

दोनों लेखों में एक प्रमुख मुद्दा यह है कि भारत में महिलाओं के मानवाधिकारों और लैंगिक समानता की प्राप्ति में सामाजिक और कानूनी बाधाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। पहली बाधा सामाजिक संरचनाओं से उत्पन्न होती है, जो महिलाओं को एक निश्चित भूमिका में बाँधती है। इन संरचनाओं के कारण महिलाएँ अपने अधिकारों के लिए आवाज़ उठाने में संकोच करती हैं और उन्हें समाज में दूसरे दर्जे का नागरिक माना जाता है।

दूसरी बाधा कानूनी ढांचे की कमज़ोरी है। मौजूदा कानून और नीतियाँ महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा के लिए पर्याप्त नहीं हैं। घरेलू श्रमिकों के लिए विशेष रूप से, कानूनी प्रावधानों में कई खामियाँ हैं, जो उन्हें कार्यस्थल पर सुरक्षित महसूस कराने में विफल रहती हैं। इसके अलावा, व्यापक स्तर पर लैंगिक समानता की प्राप्ति के लिए मौजूदा कानूनों और नीतियों में सुधार की आवश्यकता है।

कानूनी सुधार और सामाजिक जागरूकता

भारत में महिलाओं के मानवाधिकारों की सुरक्षा और लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए कानूनी सुधार और सामाजिक जागरूकता दोनों आवश्यक हैं। घरेलू श्रमिकों के मामले में, कानूनी सुधारों को इन महिलाओं की विशिष्ट परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तैयार किया जाना चाहिए। इनके लिए एक सुरक्षित और सम्मानजनक कार्य वातावरण की गारंटी के लिए नियोक्ताओं पर सख्त नियम और दंडात्मक प्रावधान लागू किए जाने चाहिए।

सामाजिक स्तर पर, महिलाओं के प्रति समाज के दृष्टिकोण में बदलाव लाना महत्वपूर्ण है। इसके लिए शिक्षा और जागरूकता अभियान

आवश्यक हैं, जो लोगों को महिलाओं के अधिकारों और उनकी गरिमा के महत्व के बारे में जानकारी दें। समाज के हर वर्ग को यह समझना होगा कि लैंगिक समानता न केवल एक कानूनी आवश्यकता है, बल्कि यह समाज के समग्र विकास के लिए भी आवश्यक है।

सांस्कृतिक परिवर्तन और लैंगिक समानता

लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोणों में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है। महिलाओं को अधिकार देने और उनकी स्थिति को सशक्त बनाने के लिए समाज के सभी वर्गों को एक साथ आना होगा। इसके लिए सरकार, गैर-सरकारी संगठनों, और नागरिक समाज के सभी हितधारकों को मिलकर काम करना होगा।

सांस्कृतिक परिवर्तन के बिना, कानूनी सुधार भी अपनी पूर्ण क्षमता से कार्य करने में असमर्थ रहेंगे। इसलिए, भारत में महिलाओं के अधिकारों और लैंगिक समानता को सुनिश्चित करने के लिए एक समग्र दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए, जो कानूनी, सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं को एक साथ लाए।

तुलनात्मक विश्लेषण

दोनों लेखों का मुख्य विषय लैंगिक समानता और मानवाधिकार है, लेकिन इनकी कार्यप्रणाली और दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण अंतर हैं।

कार्यप्रणाली का अंतर

पहला लेख घरेलू महिला श्रमिकों के एक विशिष्ट उपसमूह पर केंद्रित है, जो समाज के सबसे असुरक्षित वर्गों में से एक है। इस लेख की कार्यप्रणाली अंतर्विभागीय दृष्टिकोण पर आधारित है, जो इन महिलाओं के जीवन की जटिलताओं को गहराई से समझने के लिए उनके लिंग, वर्ग और जाति जैसे कारकों का विश्लेषण करती है। इस दृष्टिकोण से, लेख विशिष्ट अनुभवजन्य साक्ष्यों और मामलों का अध्ययन करता है, जो घरेलू कार्यक्षेत्र में महिलाओं की चुनौतियों को उजागर करता है। यह लेख उन सामाजिक और कानूनी ढांचों की आलोचना करता है जो इन महिलाओं की सुरक्षा और गरिमा को सुनिश्चित करने में असफल रहते हैं। उदाहरण के लिए, कार्यस्थल पर शोषण, असुरक्षित कार्य स्थितियाँ और असमान वेतन जैसे मुद्दों का विश्लेषण किया गया है। लेख इस बात पर ज़ोर देता है कि घरेलू महिला श्रमिकों की समस्याओं के समाधान के लिए एक समर्पित कानूनी ढांचे की आवश्यकता है, जिसमें उनके अधिकारों की सुरक्षा के लिए विशेष प्रावधान शामिल हों।

दूसरी ओर, दूसरा लेख व्यापक स्तर पर लैंगिक समानता और मानवाधिकारों के मुद्दों की समीक्षा करता है। यह लेख न केवल महिलाओं के अधिकारों की रक्षा के लिए कानूनी ढांचे की ज़रूरतों पर ध्यान केंद्रित करता है, बल्कि यह समाज में लैंगिक असमानताओं के विभिन्न आयामों का भी विश्लेषण करता है। इस लेख की कार्यप्रणाली सैद्धांतिक और समग्र है, जिसमें समाज के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के साथ हो रहे भेदभाव को समझने का प्रयास किया गया है। उदाहरण के लिए, लेख में शिक्षा, स्वास्थ्य, और रोज़गार के क्षेत्रों में महिलाओं के साथ होनेवाले भेदभाव और असमानताओं पर चर्चा की गई है। यह लेख उन सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाओं की जाँच करता है, जो महिलाओं के अधिकारों की प्राप्ति में बाधा बनती हैं और इस बात पर ज़ोर देता है कि व्यापक सामाजिक सुधारों के बिना कानूनी सुधार प्रभावी नहीं हो सकते।

दृष्टिकोण का अंतर

पहले लेख का दृष्टिकोण महिलाओं की विशिष्ट समस्याओं पर केंद्रित है, जो घरेलू कार्यक्षेत्र में अनुभव होती हैं। इस लेख में घरेलू महिला श्रमिकों के लिए एक सुरक्षित और गरिमापूर्ण कार्य वातावरण की गारंटी देने के लिए कानूनी सुधारों की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया है। इसका दृष्टिकोण विशिष्ट और लक्षित है, जो एक विशिष्ट उपसमूह की समस्याओं को गहराई से समझने का प्रयास करता है।

इसके विपरीत, दूसरा लेख समाज में लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण अपनाता है। इसमें उन सामाजिक और कानूनी ढाँचों की समीक्षा की गई है, जो महिलाओं के अधिकारों की रक्षा में शामिल हैं और यह सिफारिश करता है कि समाज में गहरी जड़ें जमाए पूर्वाग्रहों और बाधाओं को दूर करने के लिए व्यापक सामाजिक सुधारों की आवश्यकता है। इसका दृष्टिकोण समग्र और व्यापक है, जो समाज के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के साथ हो रहे भेदभाव को समझने का प्रयास करता है।

निष्कर्ष

दोनों लेख भारत में महिलाओं के मानवाधिकार और लैंगिक समानता के मुद्दों पर महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। पहला लेख घरेलू श्रमिकों के अनौपचारिक क्षेत्र में महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा के लिए विशेष रूप से लक्षित कानूनी सुधारों की तत्काल आवश्यकता पर ज़ोर देता है। यह लेख उन सामाजिक और आर्थिक बाधाओं पर भी प्रकाश डालता है, जो महिलाओं को गरिमा और सम्मान के साथ कार्य करने से रोकती हैं।

दूसरा लेख व्यापक दृष्टिकोण अपनाते हुए भारत में लैंगिक समानता की चुनौतियों और अवसरों का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह लेख समाज के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा के लिए उठाए गए कदमों की समीक्षा करता है और सुझाव देता है कि भारत में महिलाओं के मानवाधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए मौजूदा नीतियों और कानूनों को और अधिक प्रभावी बनाने की आवश्यकता है।

इन दोनों लेखों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि भारत में महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा के लिए न केवल कानूनी सुधारों की आवश्यकता है, बल्कि समाज में व्यापक जागरूकता और सांस्कृतिक बदलाव की भी आवश्यकता है। महिलाओं के मानवाधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करने और लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए समाज के सभी वर्गों को एकजुट होकर काम करना होगा। केवल तभी हम एक समृद्ध और समान समाज की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं, जहाँ सभी को समान अवसर और अधिकार प्राप्त हों।

संदर्भ:

1. चित्रा, के.पी ., लेखा, डी.बी ., सुमलथा, बी . .एस, & सैंड्रा, एम. जे. (2023), कार्यस्थल पर गरिमा और मानवाधिकारों का उल्लंघन: भारत में घरेलू महिला श्रमिकों की अंतर्विभागीय कमज़ोरियाँ। जर्नल ऑफ़ ह्यूमन राइट्स एंड सोशल वर्क।

2.ठाकुर, द.(2023) भारत में लैंगिक समानता और मानवाधिकारंमुद्दे और दृष्टिकोण : गैप इंटर डिसिप्लिनरिटीज़।

1·शोध छात्रा, कैरियर पॉइंट यूनिवर्सिटी, कोटा

2. शोध निर्देशिका,कैरियर पॉइंट यूनिवर्सिटी,कोटा-21,भारत विहार, बजरंग नगर रोड, सी सी एच के पास, कोटा

मो.9461443323, 8824425318

drsangeetamathur@gmail.com

मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों में वर्णित किसानों की समस्याएँ

◆**निवेदिता पाराशर[1], डॉ.सोनिया यादव [2]**

शोध सार :- प्रेमचंद जी ने अपने उपन्यासों में किसानों के जीवन में घट रही समस्याओं का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों, जैसे - गोदान, प्रेमाश्रम, कायाकल्प और कर्म भूमि में किसानों के जीवन में घटने वाली समस्याओं का बहुत ही बारीकी से वर्णन किया है। उन्होंने किसानों की आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का वर्णन किया है। किसानों का शोषण किस प्रकार से किया जाता है और उस शोषण से किसान किस प्रकार से अपने जीवन के

अंत तक लड़ता रहता है उसका सजीव वर्णन अपने उपन्यासों में किया है। साथ ही साथ उन्होंने किसानों को शोषण के खिलाफ लड़ने के लिए भी प्रेरित किया है। प्रेमचंद जी के समय में हमारा देश अंग्रेज़ों का गुलाम था। उस समय के किसानों को दोहरे शोषण का शिकार होना पड़ता था, एक तो अंग्रेजों का शोषण और दूसरा ज़मीदारों का। 21वीं सदी में भी किसानों की स्थिति में ज़्यादा अंतर नहीं आया है। आज भी किसान ऋण से ग्रस्त होकर आत्महत्या कर रहे हैंऔर अपने हक के लिए सड़कों पर उतरकर आंदोलन कर रहे हैं। जो हमारे देश के अन्नदाता हैं उन्हें ही भूखे पेट सोना पड़ रहा है।

मुख्य शब्द:- ऋण, आर्थिक समस्याएँ, जनसंख्या वृद्धि, गरीबी, शिक्षा की कमी, प्राकृतिक आपदाएँ भूख, पलायन।

प्रस्तावना:- प्रेमचंद जी के मन में आरंभ से ही किसानों के प्रति बहुत ही अधिक सहानुभूति और जिज्ञासा का भाव था। प्रेमचंद जी ने किसानों को होनेवाली समस्याओं का यथार्थ वर्णन अपने प्रसिद्ध उपन्यासों-गोदान, प्रेमाश्रम, कायाकल्प और कर्मभूमि-में किया है। प्रेमचंद जी ने अपने उपन्यासों में किसानो को महाजन, ज़मींदार और नौकरशाही से कहीं न कहीं संघर्ष करते हुए दिखाया है लेकिन किसान इन विकट परिस्थितियों का डटकर सामना करता है। प्रेमचंद जी के उपन्यासों में किसानों की गहरी और प्रमाणिक जानकारी प्राप्त होती है। प्रेमचंद जी का मानना था कि किसानों की समस्याओं का सबसे बड़ा कारण आर्थिक समस्या है। जब तक आर्थिक समस्याओं से किसान मुक्ति नहीं पा लेता तब तक पूर्ण स्वाधीनता को प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

भारतीय किसानों की समस्याओं को सबसे पहले प्रेमचंद जी ने ही साहित्यिक अभिव्यक्ति देने का प्रथम प्रयास किया। प्रेमचंद जी ने कृषक जीवन पर लिखे अपने पहले हिंदी उपन्यास 'प्रेमाश्रम' (1922) में किसानों की समस्याओं और संघर्षों का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। प्रेमचंद जी ने अपने समय की जिन समस्याओं का वर्णन किया आज भी किसान उन समस्याओं का सामना कर रहा है। 'प्रेमाश्रम' में ज़मीदारों के खिलाफ किसानों के संघर्ष का वर्णन किया गया है। इस उपन्यास में प्रेमचंद जी ने किसानों को नायक के रूप में दिखाया है। किसानों को ज़मीदारों के खिलाफ बेगार, लगान और बेदखली के खिलाफ अपने हक के लिए लड़ते दिखाया है। इस उपन्यास में किसानों की समस्याओं के साथ-साथ उनके समाधान का भी वर्णन किया है। इस उपन्यास में उन्होंने ज़मीदारों के द्वारा किसानों का बहुत ही शोषण दिखाया है। ज़मीदारों कों अंग्रेजों का भी संरक्षण प्राप्त था क्योंकि ज़मीदार अंग्रेज़ों को लगान वसूल करवा कर देते थे। इस प्रकार से किसान दोहरी मार झेल रहा था। वर्तमान समय में भी किसान न्यूनतम समर्थन मूल्य के लिए आंदोलन कर रहा है। सरकार से अपनी माँगों के लिए गुहार लगा रहा है। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में सबसे ज़्यादा संघर्ष करने वाला पात्र मनोहर होता है जो अकेला पड़ जाता है और अंत में उसे आत्महत्या करनी पड़ती है। आज भी अनेक किसान आत्महत्या का रास्ता अपना रहे हैं। इस उपन्यास में लगान के बढ़ने से किसानों का जीवन तबाह हो जाता है। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचंद जी एक जगह कादिर भाई और बलराज के संवाद से किसानों की दशा का वर्णन किया है। बलराज - "यह भी कोई खाना है कि एक आदमी खाय और घर के सभी आदमी उपवास करें?"[1]

कादिर भाई –"बलराज बात तो सच्ची कहता है। इस खेती में कुछ रह नहीं गया, मज़दूरी भी नहीं पड़ती। अब मेरे ही घर देखो, कुल छोटे बड़े मिलाकर दस आदमी हैं, पांच-पांच रुपए भी कमाते तो छह सौ रूपये साल भर के होते। खा- पीकर पचास रुपये बचे ही रहते। लेकिन इस खेती में रात दिन लगे रहते हैं फिर भी किसी को भरपेट दाना नहीं मिलता।"[2] इन पंक्तियों में किसानों की बड़ी दयनीय स्थिति बताई गई है। आज भी महँगाई बढ़ने के कारण किसानों को पेट भरने के लिए कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

'कर्मभूमि' उपन्यास में प्रेमचंद जी ने

बताया कि किसान बहुत कड़ी मेहनत करके अपनी फसल उगाता है तो उसे उसकी फसल की सही कीमत नहीं मिलती है। ऐसे में किसान अपने परिवार का पेट कैसे भरे, नई फसल उगाने के लिए बीज कैसे खरीदें और लगान कैसे चुकाए। किसान हर तरफ से समस्याओं से घिरा हुआ है। उसके ऊपर कर्ज की मार है, फसल की कम कीमत मिलने पर वह कर्ज कैसे चुकाए। इसमें प्रेमचंद जी ने लगान कम करने की समस्या को उठाया है। कर्मभूमि में किसानों के मुद्दे को लेकर आंदोलन चलाया गया है। इसमें किसान आर्थिक मंदी के कारण लगान को कम करने की गुहार लगाते हैं। आर्थिक मंदी के कारण किसान लगान देने की स्थिति में नहीं होते हैं। जिसके कारण वे ज़मीदारों के खिलाफ आंदोलन करते हैं आज भी किसान अपनी उन समस्याओं के समाधान के लिए अनेक आंदोलन करते हैं।

'कायाकल्प' में भी अमीर वर्ग और राजा अपनी शान शौकत और अपना दबदबा बनाए रखने के लिए गरीब किसानों से ज़बरदस्ती लगान वसूल करते थे। राजा साहब के कर्मचारी गरीब किसानों के साथ मारपीट करते थे, उनके बैल खोलकर ले जाते थे, उनसे उनकी गाय छीनकर ले जाते थे। लगान में इज़ाफा करने की धमकियाँ देते थे। लगान वसूल करने के लिए वे किसी भी हद तक गिर जाते थे। इस उपन्यास में राजतंत्र का किसानों पर अत्याचार को दर्शाया गया है।

प्रेमचंद जी की चिंता का एक विषय यह भी था कि किसानों के पास कृषि योग्य भूमि बहुत कम है। केवल कुछ ही लोगों के पास कृषि योग्य भूमि अधिक मात्रा में उपलब्ध है। बाकी लोगों के पास या तो भूमि है ही नहीं, यदि है भी तो बहुत कम है। खेत बहुत छोटे हैं और बिखरे हुए हैं। 'गोदान' उपन्यास के नायक के पास भी बहुत कम खेत है जिस पर खेती करके वह अपना और अपने परिवार का पेट पालता है। वर्तमान समय में जनसंख्या के बढ़ने के कारण कृषि योग्य भूमि कम होती जा रही है। बड़े-बड़े बिल्डर सस्ते दाम पर गरीब किसानों से उनकी भूमि खरीद कर बड़े-बड़े फ्लैटों का निर्माण कर रहे हैं। कृषि योग्य भूमि का कम होना और जनसंख्या का बढ़ना हमारे देश की अर्थव्यवस्था के लिए खतरा हो सकते हैं।

प्रेमचंद जी ने अपने उपन्यास 'गोदान' में किसान को अशिक्षित, रीतियों और परंपराओं से जकड़ा हुआ और अंधविश्वासी दिखाया है। इसका फायदा सूदखोर, ज़मींदार और पंडित उठाते हैं। शिक्षा की कमी के कारण किसान सूदखोर के चंगुल में फँस जाते हैं क्योंकि किसान को पढ़ना-लिखना नहीं आता है जिसका फायदा सूदखोर उठा लेते हैं। गोदान में होरी ने मंगरु साह से साठ रुपये लिए थे जिसमें से वह साठ रुपये दे चुका है। फिर भी साठ रुपये ज्यों के त्यों बने हुए हैं। इसी तरह से होरी ने दातादीन से 30 रुपए लेकर आलू बोए थे। उस आलू को चोर खोदकर ले गए। तीस रुपए तीन सालों में 100 रुपए हो गए। किसानों को अपने झांसे में लेते हैं। बेचारे किसान इतने ऋण के बोझ में दब जाते हैं कि एक ऋण उतारने के लिए दूसरा ऋण ले लेते हैं और ऋण के जाल में फँस जाते हैं। प्राकृतिक आपदा में फसल नष्ट होने पर भी उन्हें ऋण की पूरी कीमत चुकानी पड़ती है, भले ही उनके परिवार को खाने के लिए एक वक्त की रोटी भी नसीब ना हो। कई किसान तो ऋण का बोझ सहन नही कर पाते और आत्महत्या कर लेते है। अशिक्षा के कारण किसान अंधविश्वास और पाखंड के जाल में भी फँस जाते है। 'गोदान' उपन्यास में होरी को गाय पालने की इच्छा थी। वह ऋण लेकर गाय खरीद भी लेता है। लेकिन उसका भाई हीरा उस गाय को ज़हर दे देता है। इसके बाद होरी की स्थिति और खतरनाक हो जाती है। वह ऋण के बोझ के तले दब जाता है। जब वह मृत्यु को प्राप्त होता है तो उसे मोक्ष दिलाने के लिए पंडित गोदान के लिए बोलते हैं।

प्रेमचंद जी ने अपने उपन्यास में एक और गंभीर समस्या का वर्णन किया है जो नवयुवकों के शहरों की तरफ पलायन की समस्या है। किसानों के बच्चे

किसानी को तुच्छ समझ रहे हैं। उन्हें किसानी करने में कोई भी आर्थिक लाभ नहीं दिखाई देता है। इसलिए शहरों की तरफ पलायन कर रहे हैं ताकि वे ज़्यादा आर्थिक लाभ पा सकें। 'गोदान' में होरी का पुत्र गोबर भी अपने पिता की खेती - बाड़ी छोड़कर धन कमाने की लालसा में शहर चला जाता है। दूसरा बड़ा कारण है, गाँवों में कृषि योग्य भूमि कम होती जा रही है जिसके कारण युवा शहरों की तरफ रुख कर रहे हैं। 'गोदान' को प्रेमचंद जी का सबसे सशक्त उपन्यास माना जाता है, जिसमें किसानों की दशा को बहुत ही सूक्ष्म तरीकों से वर्णन किया है। होरी अपनी मरजाद की रक्षा कष्ट सहते हुए भी करता रहता है। होरी बहुत ही सीधा-साधा किसान है। खेती करके जितनी फसल की पैदावार करता है वह सूद के रूप में महाजनों के पास चली जाती है। वह कड़ी मेहनत करके भी दो वक्त की रोटी भी अपने परिवार को नहीं दे पाता है। उसके ऊपर ऋण का बहुत अधिक भार है। कर्ज के भार के कारण उसका जीवन बहुत दूभर हो गया था। वर्तमान समय में भी किसान खेती करने के लिए और अपने परिवार का पालन-पोषण करने के लिए ऋण लेता है। लेकिन यदि किसी कारणवश वह ऋण नहीं चुका पाता तो उसकी ज़िंदगी दूभर हो जाती है। वहाँ ऋण के जाल में फँसता ही जाता है, जिससे बाहर निकलना उसके लिए आसान नहीं हैं। किसान के बच्चे इतना कष्ट देखने के बाद खेती करना ही नहीं चाहते। 'गोदान' उपन्यास में प्रेमचन्द जी ने किसानों की लगभग सभी समस्याओं को समाहित कर लिया है। इस उपन्यास में होरी की अनुकूल परिस्थितियाँ भी उसके खिलाफ आकर खड़ी हो जाती हैं। 'गोदान' का होरी जीवन भर संघर्ष करता रहता है। लेकिन कभी हार नहीं मानता। वह शोषण का शिकार होने पर भी मेहनत करता रहता है। होरी ऋण के जाल में इतना अधिक फँसा होता है कि वह एक ऋण को उतारने के चक्कर में तीन साहूकारो से ऋण ले लेता है। ऋण कम होने की बजाय दिन - प्रतिदिन बढ़ता जाता है। उस ऋण का भार इतना अधिक हो जाता है कि वह खेतिहर किसान से मात्र एक मज़दूर बनकर रह जाता है। जिस गाय को पालने की वह लालसा रखता है, न तो वह गाय उसे मिलती है और न ही उसके खेत उसके पास रहते हैं। प्रेमचंद जी ने आरंभ में होरी को बहुत मेहनती, आत्मविश्वास से भरा हुआ, विपरीत से विपरीत परिस्थितियों में धैर्य रखनेवाला, कभी भी हिम्मत हारनेवाला दिखाया। लेकिन ऋण के बोझ ने उसकी कमर तोड़ दी। वह ऋण चुकाने के लिए कड़ी मेहनत करता है। लेकिन उम्र बढ़ने के कारण वह पहला जैसा काम नहीं कर सकता है। वह ऋण चुकाने के लिए बिना कुछ खाए-पिए दिन रात मेहनत करने के कारण उसका शरीर साथ छोड़ देता है। वह सड़क पर गिर जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। वह अपने जीवन की लड़ाई से हार जाता है। उसकी सभी इच्छाएँ उसी के साथ खत्म हो जाती हैं। गोदान भारतीय किसानों की वेदना की अभिव्यक्ति है।

हमारा देश एक कृषि प्रधान देश है। किसान को भारतीय संस्कृति का मूल आधार माना जाता है। खेती करना ही किसानों की आजीविका का मुख्य साधन है। लेकिन हमारे देश में किसानों की अवस्था अत्यंत दयनीय है। ऋण के बोझ के कारण अनेक किसान आत्महत्या तक कर रहे हैं। जो किसान देश के लोगों के पेट भर रहे हैं, वे किसान भूखे पेट सो रहे हैं। भले ही सरकार किसानों के लिए अनेक नियम बना रही है, लेकिन ये नियम सिर्फ कुछ ही किसानों तक पहुँच रहे हैं। बहुत ही कम किसान इसका लाभ उठा रहे हैं। कमी है जागरूकताअभियान की। कई किसानों को तो नीतियाँ होते हुए भी उनकी जानकारी नहीं होती है। किसानों की अवस्था बहुत ही दयनीय है। भले ही कैसा भी मौसम हो लू चले, शीत लहर चले, या फिर भयंकर भारी बारिश हो किसान खेती करना नहीं छोड़ता। सरकार अपने भले के लिए किसानों का इस्तेमाल करती है। जब चुनाव का समय आता है तो किसानों के लिए नई-नई स्कीम चालू कर देती है ताकि भोले- भाले किसान इनके झांसे में आकर

उन्हें चुनाव में जीने दें। अनाज को उगानेवाले किसान को अपने अनाज का भाव तय करने का कोई अधिकार नहीं है। अनाज का भाव सरकार तय करती है, जिसे यह मालूम ही नहीं कि किसान ने अनाज को उगाने के लिए कितनी कड़ी मेहनत की है।

किसान न्यूनतम मूल्य के लिए सरकार से गुहार लगाता रहता है। किसान जब तक आर्थिक रूप से उन्नत नहीं होगा तब तक देश की उन्नति भी संभव नहीं है। हमारे देश में किसान की सबसे बड़ी समस्या ऋण की है। किसान किसी न किसी कारणवश ऋण लेता है-कभी बीज खरीदने के लिए, कभी बच्चों की पढ़ाई के लिए,कभी बच्चों की शादी के लिए या फिर बीमारी के इलाज के लिए। सभी किसान किसी न किसी कारण से ऋण के जाल में फँसे हुए हैं।यदि सरकार उन्हें ब्याज में छूट भी देती है तो, उसका लाभ सभी तक नहीं पहुँच पाता है। केवल कुछ ही किसान होते हैं, जो इसका लाभ उठा पाते हैं। बहुत सारे किसानों के पास कागज़ात नहीं होते जिससे वह स्कीम का फायदा उठा पाए। बहुत से किसान अशिक्षित होने के कारण सरकार की स्कीम को समझ ही नहीं पाते हैं। ज़रूरी है सरकार को जागरूकता अभियान चालू करने की या घर-घर जाकर हर किसान को स्कीम समझाने की जिससे ज़्यादा से ज़्यादा किसान लाभ प्राप्त कर सकें। सरकार को अभी किसान की हालत सुधारने के लिए अनेक कदम उठाने की आवश्यकता है। किसान की एक और समस्या यह है कि अब किसानों के बच्चे खेती-बाड़ी नहीं करना चाहते हैं।उनका मानना है की खेती बाड़ी से ज़्यादा आर्थिक लाभ नहीं होता है। वे शहरों में जाकर नौकरियाँ करते हैं। सरकार को कृषि को बढ़ावा देना चाहिए, क्योंकि हमारे देश की अर्थव्यवस्था कृषि पर ही निर्भर है।

निष्कर्ष :-

प्रेमचंद जी एक ऐसे उपन्यासकार थे, जिन्होंने किसानों के जीवन को बहुत ही सूक्ष्म रूप से समझा। उनकी दयनीय दशा का उन्होंने अपने उपन्यासों में वर्णन किया। किसान जीवन की जितनी गहरी समझ प्रेमचंद को थी- उतनी किसी भी साहित्यकार को नहीं हो सकती। प्रेमचंद जी ने अपने उपन्यासों में किसानों की पीड़ा, बदहाली, गरीबी भाग्यवादिता, उनका कर्ज में डूबना और शोषण का शिकार होना आदि का यथार्थ चित्रण किया है। वह वर्तमान समय में परिवर्तित परिस्थितियों में भी किसान की समस्याएँ कम नहीं हुई हैं, बल्कि निरंतर बढ़ती जा रही हैं। आज भी किसान अशिक्षा के कारण तकनीकी और वैज्ञानिक खेती से अंजान हैं। आज भी कई किसान अपनी खेती के लिए मौसम पर निर्भर हैं। प्रेमचंद जी ने किसानों की दयनीय दशा का वर्णन भले ही किया है, लेकिन उनके उपन्यासों में किसानों में मानवता और आत्मबल कूट-कूट के भरा दिखाये गये हैं। वर्तमान में महँगाई किसानों को दोहरी मार दे रही है। अधिक उत्पादन करनेवाले हाइब्रिड बीजों की कीमत बहुत अधिक है, जैसे गरीब किसानों को खरीदना मुश्किल है। प्रेमचंद जी किसानों की गरीबी का मुख्य कारण लगान, ऋण, और ज़मींदारी प्रथा को मानते थे। आज भले ही ज़मींदारी प्रथा खत्म हो गई है, लेकिन ज़मीदारों का रूप बड़े किसानों ने ले लिया है जो किसी न किसी तरीके से छोटे किसानों का शोषण कर रहा है।प्रेमचंद जी किसानों की स्थिति में बदलाव चाहते थे जिसके कारण उन्होंने अपने उपन्यासों में किसानों की दशा का वर्णन किया है।

संदर्भ:

1. प्रेमाश्रम, प्रेमचन्द: वायु एजुकेशन ऑफ इंडिया, संस्करण 2019, पृ. 54

2 वही, पृ. 54

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. प्रेमचन्द घर में -शिवरानी देवी, आत्माराम एण्ड सन्स, संस्करण 2006, पृ. 197
2. गोदान, प्रेमचन्द– पृ. 18, 1936, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकार कार्यालय, बंम्बई।
3. गोदान, प्रेमचन्द - पृ.19
4. कर्मभूमि, प्रेमचन्द, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली-संस्करण 2005 पृ. 184
5. प्रेमाश्रम, प्रेमचन्द- न्यू साधना पॉकेटबुक्स, दिल्ली संस्करण 2008, पृ. 167

6. वही, पृ. 201, 166, 149, 191

7. प्रेमचन्द और उनका युग, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली संस्करण, 1952,तीसरी आवृत्ति, 2002, पृ. 54

8. डॉ. रामबक्ष, प्रेमचन्द और भारतीय किसान, वाणी प्रकाशन, संस्करण 1982, पृ. 34, 178

9. प्रेमचन्द, गोदान, वायु एजुकेशन ऑफ इंडिया संस्करण 2019,पृ. 45

◆[1]शोध छात्र, हिंदी विभाग,
मंगलायतन विश्वविद्यालय, बेसवा, अलीगढ़।
नामांकन संख्या – 20200955
फोन: 9372340880
[2] शोध मार्गदर्शिका, हिन्दी विभाग
मंगलायतन विश्वविद्यालय, बेसवा, अलीगढ़।

मणिपुर, मिज़ोरम और त्रिपुरा की सांस्कृतिक परंपराएँ और बदलती जीवन-शैली

◆बिभूति बिक्रमनाथ

शोध-सार : मणिपुर, मिजोरम और त्रिपुरा जैसे पूर्वोत्तर भारतीय राज्य अपनी समृद्ध सांस्कृतिक परंपराओं और विरासत के लिए जाने जाते हैं। यह विरासत सदियों से पारंपरिक सभ्यताओं, औपनिवेशिक प्रभावों और आधुनिकीकरण की नई लहरों के बीच विकसित और संरक्षित हुई है। मणिपुर, अपनी गहरी सांस्कृतिक जड़ों के साथ, अपने अनूठे नृत्य रूपों और रास लीला जैसे धार्मिक अनुष्ठानों के लिए प्रसिद्ध है। हालाँकि, यह राज्य धीरे-धीरे शहरी जीवन-शैली और आधुनिक प्रभावों की ओर बढ़ रहा है। ईसाई बहुल मिजोरम ने अपनी कृषि पद्धतियों और सामुदायिक जीवन में आधुनिक आर्थिक गतिविधियों को आत्मसात करके संतुलन बनाया है। इसके बावजूद, मिजोरम में अभी भी जमीन और सामुदायिक पहचान के प्रति गहरा लगाव है। दूसरी ओर, त्रिपुरा आदिवासी और बंगाली संस्कृति के गहरे प्रभावों से प्रभावित हैं और अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखते हुए बदलाव के दौर से गुज़र रहे हैं। यह शोध अध्ययन इन तीन राज्यों की सांस्कृतिक परंपराओं, बदलते सामाजिक-आर्थिक परिदृश्यों और पूर्वोत्तर भारत में संस्कृति, परंपरा और विकास के अंतर्संबंधों पर केंद्रित होगा। अध्ययन का उद्देश्य इन राज्यों की सांस्कृतिक विरासत को समझना तथा विकास एवं आधुनिकता की प्रक्रिया के साथ इसके सामंजस्य का विश्लेषण करना है।

बीजशब्द: पूर्वोत्तर, परम्परागत, परंपराएँ, परिदृश्य, अनुरूप, प्रभुत्व, वैश्वीकरण, शहरीकरण, आधुनिकीकरण।

मूल आलेख:

प्राचीन काल से ही मानव समाज सांस्कृतिक परम्परा एवं सामाजिक विचारधारा के अनेक आयामों में संलिप्त रहा है। संस्कृति मानव चेतना की जीवन-चेतना से अर्जित आत्म-अनुभव का एक विशाल परिदृश्य है। आज आत्म-अनुभव की यह शृंखला मौखिक अथवा लिखित रूप में समाज में विकसित हो रही है। 'लोक संस्कृति' समाज या समुदाय का एक अपरिहार्य एवं विकसित घटक है। यह विकसित सृजनात्मकता विचार एवं सभ्यता के सौन्दर्यात्मक एवं कलात्मक विकास के द्योतक भी है। धीरे-धीरे यह विचार एवं कला-शैली सार्वभौमिक एवं सांस्कृतिक प्रबोधन में परिवर्तित होकर लोक संस्कृति की 'विकसित सांस्कृतिक परम्परा' की प्रवृत्ति बन जाती है। सम्पूर्ण विश्व, समाज या समूह का दायरा भी इस प्रक्रिया के दायरे में परिलक्षित होता है। पूर्वोत्तर भारत अनेक जातियों एवं जनजातियों की मिलन भूमि होने के कारण सभी जातियों एवं जनजातियों में विविध परम्पराएँ एवं लोक मान्यताएँ हैं। इसी क्रम में पूर्वोत्तर भारत के तीन सांस्कृतिक

राज्य- मणिपुर, मिजोरम एवं त्रिपुरा - अत्यंत प्रसिद्ध हैं। प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण, सांस्कृतिक भिन्नताओं वाले तथा अनेकता में एकता की मैत्री निभाने वाले पूर्वोत्तर के इन तीनों राज्यों के बारे में विद्वानों के अलग-अलग विचार एवं दृष्टिकोण दृष्टिगोचर होते हैं। डॉ.हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने 'लोक' शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम से न लेकर नगरों व गाँवों में फैली उस समूची जनता से लिया है जो परिष्कृत, रुचिसंपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन की अभ्यस्त होती है। (जैन, शान्ति.लोकगीतों के संदर्भ और आयाम.वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2019, आमुख पृष्ठ) आठ राज्यों की मिलन भूमि पूर्वोत्तर भारत अनेक जातियों एवं जनजातियों का मिश्रण है। इसमें क्रमश: असम, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मिजोरम, मणिपुर एवं त्रिपुरा, सिक्किम जैसे आठ राज्य शामिल हैं। इन सभी राज्यों की सभ्यताओं एवं संस्कृतियों में अनेक समानताएँ हैं। लेकिन सभी राज्यों में मुख्य समानता कृषि व्यवस्था की प्रधानता है। संपूर्ण पूर्वोत्तर भारत आर्थिक उपार्जन के लिए मुख्यतः कृषि व्यवस्था पर निर्भर है। इस दृष्टि से मणिपुर, मिजोरम और त्रिपुरा उन्नत स्तर के राज्यों में से हैं। 1972 में स्वतंत्र राज्य का दर्जा पाने वाले मिजोरम में मिजो और लुचाई जनजातियों की संख्या बड़ी है। इसके अलावा यहाँ 'मार, पविच, रेलचे, पेइटे, थादो, लाखेर, चाकमा आदि जातीय समुदाय भी हैं। मिजोरम की तरह मणिपुर राज्य भी 1972 में स्वतंत्र राज्य के रूप में भारत का हिस्सा बना। इस राज्य में मुख्य रूप से मैतेई जनजाति देखी जा सकती है। इसके अलावा मणिपुर के पहाड़ी क्षेत्र में 'कूकी' और 'नागा' की लगभग 29 जनजातियाँ पाई जाती हैं। 'मैतेई' मंगोल नृवंश के अंतर्गत है, लेकिन उनमें से अधिकांश हिंदू धर्म के हैं। अल्पसंख्यक मैतेई हैं जो अपनी पारंपरिक धार्मिक चेतना में विश्वास रखते हैं। हालाँकि, पहाड़ी क्षेत्र में ईसाई धर्म को मानने वाले लोग भी हैं। 1975 में गठित 'त्रिपुरा' राज्य विभिन्न जाति-जनजाति समूहों से मिलकर बना राज्य है। इस राज्य के आदिम लोग 'टिपरा, रेंग और ह्वांगखोल' आदि थे। ये मंगोल जातियाँ संभुत बरो-गोष्ठी से संबंधित थीं। त्रिपुरा में वैदिक-संस्कृति का पालन करने वाले हिंदू धर्म के लोग अधिक हैं। इसके अलावा यहाँ के विशेष क्षेत्र में बौद्ध धर्म और नाथ संप्रदाय का प्रभाव भी परिलक्षित होता है।

कृषि प्रधान राज्य मणिपुर में कृषि के अलावा कई लघु उद्योग भी हैं जो आर्थिक कमाई का जरिया हैं। जीवन के सांस्कृतिक दर्शन में कृषि का अतुलनीय योगदान है। विभिन्न जातियों और समूहों का संगम स्थल मणिपुर अपनी पारंपरिक संस्कृति और त्योहारों में विविधता लिया हुआ है। यहाँ के त्योहार ज़्यादातर किसानों के जीवन पर आधारित होते हैं। मणिपुर के प्रमुख त्यौहार हैं – 'कुट महोत्सव' (यह मणिपुर के कुकी समुदाय द्वारा भरपूर फसल के सम्मान में आयोजित किया जाता है), 'चुंफा' (यह भी फसल से संबंधित त्यौहार है, इसे मणिपुर के तांगकुल जनजाति द्वारा अपने देवता को धन्यवाद देने के लिए आयोजित किया जाता है), 'लुई-नगाई-नी' (यह मणिपुर के नागा समुदाय द्वारा फसलों की बुवाई के समय मनाया जाता है) आदि। इन उल्लेखनीय त्यौहारों के अलावा, अन्य महत्वपूर्ण त्यौहार हैं - 'लाई हरोबा' (यह उमंग लाई देवता की पूजा के नाम पर मनाया जाता है), गांग-नगाई', 'याओसांग', 'कांग उत्सव' (कांग का शाब्दिक अर्थ 'रथ' है, इसलिए इसे रथ यात्रा भी कहा जा सकता है।) आदि।

पूर्वोत्तर भारत का एक और महत्वपूर्ण राज्य है मिजोरम। पहाड़ों से घिरा और प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर मिजोरम भी एक कृषि प्रधान राज्य है। इसलिए यहाँ के त्यौहार भी कृषि चक्र पर निर्भर हैं। ज्ञातव्य है कि मिजोरम का शाब्दिक अर्थ पहाड़ों की भूमि है। इसलिए यहाँ के किसान झूम खेती के माध्यम से फसल उगाते हैं। कृषि चक्र से जुड़े त्यौहारों का मिजो लोगों की कला और संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान

है। मिजोरम के बहुरंगी त्योहारों में कुछ महत्वपूर्ण त्योहार हैं –'चापचर कुट'(यह मिजोरम की पारंपरिक संस्कृति का सबसे पुराना त्योहार है, जो वसंत ऋतु के स्वागत के साथ-साथ फसल कटने के बाद नई फसल बोने की तैयारी के लिए मनाया जाता है), 'मिम कुट (इस त्योहार को मनाने का उद्देश्य फसल के साथ-साथ पूर्वजों की स्मृति को संरक्षित करना और उन्हें श्रद्धांजलि देना है), 'पावल कुट' (यह त्योहार प्रचुर फसलों के उत्पादन के लिए देवताओं को धन्यवाद देने के लिए मनाया जाता है), 'थालफवांग कुट' (यह त्योहार भी फसलों से संबंधित है, यह तब मनाया जाता है जब फसल खेतों से घर आने की प्रक्रिया में होती है), 'खुवादो कुट' (यह मिजोरम के 'पाइते' आदिवासी समूहों द्वारा फसल कटने के बाद अपने देवता को धन्यवाद देने के लिए मनाया जाता है) इत्यादि।

त्रिपुरा पूर्वोत्तर भारत का सबसे छोटा राज्य है। यह न केवल पूर्वोत्तर, बल्कि पूरे भारत में क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे छोटे राज्य के रूप में जाना जाता है। त्रिपुरा संतरे, रबड़, चाय और बांस व बेंत के बागानों के लिए बहुत प्रसिद्ध है। खजानों से भरा और प्राकृतिक सौंदर्य के लिए महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले इस छोटे से राज्य ने आश्चर्यजनक रूप से अपने प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित किया है। कहने की ज़रूरत नहीं कि पूर्वोत्तर भारत के सभी राज्य 'कृषि' राज्य हैं और 'त्रिपुरा' भी इससे अछूता नहीं है। इसलिए यहाँ के त्योहार भी किसानों के जीवन चक्र पर आधारित हैं। यहाँ की जातियों और समुदायों की कला और संस्कृति के साथ-साथ उनकी जीवनशैली में भी कई देवी-देवताओं की पूजा झलकती है। त्रिपुरा में पूजी जाने वाली देवी 'त्रिपुरेश्वरी' हैं, जिनकी पूजा लगभग पूरे त्रिपुरा में देखी जा सकती है। इसके अलावा उर्वरता के देवी-देवताओं में विश्वास के कारण आकाश और समुद्र के देवता (जिन्हें 'लाम-प्रा' के नाम से जाना जाता है), की भी पूजा की जाती है। शारीरिक स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए 'बुरहा-सा' की पूजा की जाती है, मकई की देवी 'मेलु-मा' और कपास के पौधों की देवी 'खुलु-मा' आदि की पूजा भी समय-समय पर की जाती है। त्रिपुरा के कुछ अन्य महत्वपूर्ण त्यौहार हैं - 'खर्ची पूजा', 'गरिया पूजा', ' गंगा पूजा', 'केर पूजा', 'निरमहल जल महोत्सव' आदि। इसके अलावा, दुर्गा पूजा, दिवाली, ढोल यात्रा, पोस संक्रांति, अशोक अष्टमी, बुद्ध जयंती, क्रिसमस आदि भी बड़ी धूमधाम से मनाए जाते हैं।

चर्चित तीनों राज्यों के पारंपरिक त्योहारों की संक्षिप्त चर्चा करने से यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि पूर्वोत्तर भारत की पारंपरिक सांस्कृतिक जीवन शैली में कृषि-व्यवस्था की अतुलनीय भूमिका है। लगभग सभी राज्यों के त्योहारों के साथ किसानों का जीवन चक्र गहराई से जुड़ा हुआ है। आदिवासियों और गैर आदिवासियों की पारंपरिक जीवन-शैली, उनके दैनिक जीवन के सभी मूल्य कृषि जीवन-शैली से सहज ही प्रभावित होते हैं। लेकिन आधुनिक समय में संपूर्ण विश्व में बढ़ते तकनीकी कारकों के कारण तेज़ी से मशीनी आविष्कारों के फलस्वरूप आधुनिकीकरण, बाज़ारीकरण, शहरीकरण, वैश्वीकरण आदि के सकारात्मक प्रभावों ने समाज में प्रगतिशीलता तो ला दी है, लेकिन इसके नकारात्मक प्रभावों के कारण संपूर्ण विश्व के साथ-साथ पूर्वोत्तर भारत के विभिन्न जाति-जनजाति समूहों में मूल्यों का बदलता स्वरूप दिखाई दे रहा है। वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभावों के कारण आज लगभग सभी क्षेत्र 'जल, जंगल, ज़मीन' के लिए संघर्ष करते नज़र आ रहे हैं। आज जमीन उद्योगपतियों को सौंपी जा रही है। इससे न केवल किसानों को बल्कि सामाजिक पर्यावरण को भी नुकसान हो रहा है। आज पारंपरिक कृषि प्रणालियों को आधुनिक यांत्रिक तरीकों का उपयोग करके किया जा रहा है। बाज़ार में हर चीज़ के दाम बढ़ने के कारण लोग अधिक उत्पादन पर ध्यान दे रहे हैं और इस चक्कर में वे कृषि में रासायनिक दवाइयों का प्रयोग करते हैं। इसका समाज पर बुरा असर पड़ता है। मणिपुर, मिजोरम और त्रिपुरा कृषि प्रधान क्षेत्र होने

के कारण प्राकृतिक वातावरण और भौगोलिक परिवेश को ध्यान में रखते हुए यहाँ के लोग 'चावल' खाना ज़्यादा पसंद करते हैं। इसका एक अन्य कारण यह भी हो सकता है कि इन राज्यों में 'चावल' की अलग-अलग प्रजातियाँ पैदा की जाती हैं और यह आर्थिक तरक्की का ज़रिया भी है। गौरतलब है कि किसी क्षेत्र विशेष के खान-पान की आदतें वहाँ की पारंपरिक जीवनशैली से जुड़ी होती हैं। इसलिए पूर्वोत्तर भारत की पारंपरिक रीति-रिवाज़ों, त्योहारों आदि के साथ-साथ यहाँ के खान-पान का भी महत्वपूर्ण स्थान है। लेकिन वैश्वीकरण के प्रभाव के कारण पूरी दुनिया के साथ-साथ मणिपुर, मिजोरम और त्रिपुरा समेत पूर्वोत्तर भारत के अन्य राज्यों में भी बदलाव देखने को मिल रहे हैं। आज यहाँ की भोजन प्रणाली चीनी, अमेरिकी, थाई, कोरियाई आदि विदेशी खाद्य पदार्थों से प्रभावित हो गई है। इससे कुसंस्कृति का विकास हुआ है तथा सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन आया है। सब कुछ बदलता है, बढ़ता है और रूपांतरित होता है और यह अपरिहार्य भी है। अतः सामाजिक जीवन में परिवर्तन स्वाभाविक है और सामाजिक जीवन में परिवर्तन से संस्कृति में भी परिवर्तन आता है। यह संसार का शाश्वत नियम है। वैश्वीकरण के प्रभाव के कारण आज शहरी सभ्यताओं और संस्कृतियों ने हमारी 'कृषि संस्कृति' को बदल दिया है। इसी प्रकार आधुनिक सभ्यता और वैश्वीकरण के उन्माद में कृषि संस्कृति भी बदल गई है। आधुनिक जीवनशैली लोगों की मानसिकता को बदलने के साथ-साथ उनकी जीवनशैली में भी परिवर्तन लायी है। लोग अपनी संस्कृति के साथ-साथ पश्चिमी संस्कृतियों की ओर अधिक आकर्षित हो रहे हैं। पूर्वोत्तर भारत के राज्यों में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में मनुष्य की जीवनशैली बदल गई है और बदल रही है। पारंपरिक वैभव और आधुनिकता के विकसित आयाम, दोनों ही समसामयिक और सापेक्ष तरीके से आगे बढ़ रहे हैं। हमारा दायित्व आधुनिकता के आग्रह से लेकर लोक-सांस्कृतिक परंपराओं के संरक्षण और संवर्धन तक होना चाहिए।

निष्कर्ष:

मणिपुर, मिजोरम और त्रिपुरा में परंपरा और आधुनिकता के बीच यह विकसित गतिशीलता सांस्कृतिक संरक्षण, पहचान और इन समाजों के भविष्य को आकार देने की एक महत्वपूर्ण इकाई बनाती है। मणिपुर, मिजोरम और त्रिपुरा का सांस्कृतिक और सामाजिक भविष्य इस बात से निर्धारित होने की संभावना है कि ये राज्य परंपरा और आधुनिकता के बीच किस तरह संतुलन बनाए रखते हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि उनकी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत न केवल संरक्षित है, बल्कि तेज़ी से बदलती दुनिया के संदर्भ में उत्तरोत्तर संवर्धित और विकसित भी हो रही है। अतः यह कहा जा सकता है कि आधुनिक गतिशीलता, सांस्कृतिक परम्परा और बदलती जीवनशैली की इस श्रृंखला में मणिपुर, मिजोरम और त्रिपुरा के लोग बदलते समय के साथ विकसित होते हुए अपनी सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित और संवर्धित करने के लिए दृढ़ संकल्पित और अग्रणी हैं।

सहायक ग्रन्थ:

1. बरा, देवजीत, सं. *उत्तर पूर्वांचलर जनगोष्ठिय लोक-संस्कृति*. गुवाहाटी: एम.आर. पब्लिकेशन, 2018.
2. शर्मा, नवीन चन्द्र. *लोक संस्कृति*. गुवाहाटी: चन्द्र प्रकाश, 2019.
3. शर्मा, नवीन चन्द्र. *भारतर उत्तर पूर्वांचलर लोक संस्कृति*. गुवाहाटी: बाणी प्रकाश मंदिर, 2017.
4. नाथ, प्रफुल्ल कुमार, सं. *वृहत्तर असमर बर्निल संस्कृति*. गुवाहाटी: रेखा प्रकाशन, 2021.
5. Barad. Gomit K. *Geography of North East India*.Daryaganj, Delhi:pacific books international, 2018

◆ शोधार्थी, हिंदी विभाग,
तेजपुर विश्वविद्यालय, असम (पूर्वोत्तर भारत)
ई-मेल– bibhutibikram.nath2.8@gmail.com
फोन - 8135073278

'जीती बाजी की हार' कहानी में अभिव्यक्त पारिवारिक व सांस्कृतिक मूल्य

◆स्निग्धा सिंह

शोध सार : प्रस्तुत शोध पत्र मन्नू भण्डारी द्वारा रचित कहानी 'जीती बाजी की हार' में वर्तमान की उस समस्या का सूक्ष्म अंकन किया गया है जिसमें महिलाएँ अपने उज्ज्वल भविष्य के निर्माण में इस प्रकार से निमग्न हो गई हैं कि सामाजिक मूल्य के अंतर्गत आने वाले पारिवारिक व सांस्कृतिक मूल्यों को भी भूल रही हैं। प्रस्तुत कहानी की मुख्य स्त्री पात्रों, जैसे आशा, मुरला व नलिनी को अध्ययन का आधार बनाया है। इस शोध पत्र में 'जीती बाजी की हार' कहानी के माध्यम से स्त्रियों की उस सोच के पीछे के कारणों की खोज की गई है, जिसमें वे विवाह को जीवन का आवश्यक अंग न मानकर अपने अस्तित्व के लिए खतरा मानती हैं। वे करियर में बढ़ते अवसरों और स्वतन्त्रता को ही प्राथमिकता देती हैं। उनका मानना है कि अविवाहित रहकर ही वे अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सकती हैं। अगर इस प्रकार का विचार समाज की प्रत्येक महिला के अंदर आ जाये तो समाज रूपी गाड़ी किस प्रकार आगे बढ़ेगी? आखिर किन कारणों से महिलाएँ एकाकी जीवन शैली को अपनाने के लिए बाध्य हो रही हैं? क्यों स्त्रियों का वैवाहिक सम्बन्धों पर से विश्वास कम होता जा रहा है? निम्नलिखित प्रश्नों की पड़ताल 'जीती बाजी की हार' कहानी के माध्यम से उक्त आलेख में की गयी है।

बीज शब्द : मूल्य, सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक, दासता, स्वतन्त्रता, बन्धन, विसंगति, विवशता, उकताहट, मनोविज्ञान, अविवाहित, नकारात्मक, अकेलापन।

मूल आलेख :स्वस्थ समाज के निर्माण में साहित्य अहम भूमिका निभाता है। इसमें अपने युग के परिवेश व परिस्थिति का यथार्थ अंकन मिलता है। अर्थात् वर्तमान जीवन में जो घटित होता है वही साहित्य में भी दृष्टिगत होता है।"साहित्य युगीन-परिवेश और समाज के उत्थान-पतन, आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, राग-द्वेष तथा मानवीय संवेदनाओं का ऐसा जीवंत दर्पण है, जिसमें साहित्यकार अपने युग का ऐसा सजीव चित्रण करता है कि भावी पीढ़ियाँ इससे प्रेरणा लेकर विकास के मार्ग पर अग्रसर होती रहें।"[1] अर्थात् मानव जाति के विकास में साहित्य का अमूल्य योगदान रहा है। दरअसल साहित्य और जीवन-मूल्य का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहा है। इसी आधार पर बाबू गुलाब राय ने साहित्य और जीवन-मूल्य का परस्परिक सम्बन्ध इंगित करते हुए लिखा है कि "साहित्य के मूल्य जीवन के मूल्यों से भिन्न नहीं हैं। अतः यह बात सर्वमान्य है कि जिसका जीवन में मूल्य है, उसका साहित्य में भी मूल्य है।"[2]मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और वह प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से समाज से जुड़ा होता है। व्यक्ति का सामाजिक ढाँचे को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए सामाजिक मान्यताओं का पालन करना अति आवश्यक है। यही कारण है कि साहित्य और समाज एक दूसरे से जुड़े होते हैं।

बहुपठित व जनप्रिय लेखिका मन्नू भण्डारी साहित्य जगत की एक जानी-मानी शख्सीयत रही हैं। इन्होंने परिमाण में बहुत अधिक न लिखा, पर जितना लिखा, उसमें जीवन का यथार्थ इतनी सहजता व आत्मीयता से चित्रित किया कि वह बड़ी ही सरलता से पाठक वर्ग से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। इनके प्रमुख कहानी संग्रह- मैं हार गई'(1957), 'तीन निगाहों की एक तस्वीर' (1959), 'यही सच है' (1966), 'एक प्लेट सैलाब' (1968), 'त्रिशंकु' (1978) आदि -अपने समय के जीवंत दस्तावेज़ रहे हैं। आधुनिक कथा लेखिका के रूप में इनका नाम उल्लेखनीय रहा है। इन्होंने अपनी रचनाओं में मध्यवर्गीय जीवन की विसंगतियों और विडंबनाओं का जीवंत चित्रण किया है। मन्नू जी कहानी, उपन्यास, नाटक जैसी विधाओं के साथ-ही-साथ कला के दूसरे माध्यमों, जैसे- सिनेमा और टेलीविज़न से भी जुड़ी रहीं। नई कहानी आंदोलन से जुड़ी सशक्त हस्ताक्षर व महिला कथाकार के रूप में इनकी उपस्थिति को कोई नकार नहीं सकता।

मन्नू भण्डारी की कलम स्त्री मनोविज्ञान का

चित्रण करने में सबसे अधिक चली है। इसके अलावा भी इन्होंने मानव जीवन के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, पारिवारिक आदि पक्षों का वर्णन मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति के साथ किया है। इन्होंने अपने समूचे कथा-साहित्य में विविध जीवन-मूल्यों को उजागर किया है। इनकी कहानियाँ भारतीय समाज की पारिवारिक व सामाजिक बनावट का जीवंत दस्तावेज़ बनकर उभरती हैं।

इन्होंने अपने पहले कहानी संग्रह 'मैं हार गई' में संकलित कहानी 'जीती बाजी की हार' में 'मुरला' के माध्यम से व्यक्ति के सामाजिक दायित्व का निर्वहण न करने का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है। 'सामाजिक दायित्व' वे हैं जो समाज की अपेक्षाओं व मर्यादाओं से जुड़े होते हैं। उदाहरणस्वरूप कृतज्ञता, सामाजिक समरसता, न्याय, विश्वास, सामूहिकता, सहानुभूति, जातीय सुरक्षा एवं संतान उत्पत्ति आदि। इन मूल्यों अथवा दायित्वों को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त होती है। सामाजिक मूल्यों के अंतर्गत पारिवारिक व सांस्कृतिक मूल्य भी आते हैं। मूल्यों के निर्माण में परिवार ही पहली सीढ़ी होती है। 'परिवार' समाज की सबसे छोटी इकाईहै। यहीं से निकलकर व्यक्ति नागरिक बनता है तथा समाज के निर्माण में अहम भूमिका निभाता है। पारिवारिक मूल्यों में बड़ों का आदर, पति-पत्नी के मध्य स्वस्थ सम्बन्ध, बच्चों के प्रति स्नेह भाव आदि आते हैं। परिवार ही वह संस्था है जिसमें मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास होता है। उसमें प्रेम, आदर, सद्भाव, ज़िम्मेदारी आदि भावों अथवा मूल्यों का समावेश होता है।

"सांस्कृतिक मूल्यों से अभिप्राय संस्कृति सम्बन्धी मूल्यों से है। जिसके लिए अंग्रेजी शब्द 'कल्चरल वैल्यूज़' प्रचलित है।"[3] यह संस्कृति की एक ऐसी प्रवाहित धारा है जो समाज की मान्यताओं, मूल्यों व आदर्शों को अपने में समाहित करती है। जीवन, कला, बच्चों का पालन-पोषण, ज्ञान की खोज, प्रेम, विवाह, ईश्वर, युद्ध, अपराध, क्रांतियाँ, प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण आदि संस्कृति के क्रिया-कलाप हैं। संस्कृति और मूल्य में परस्पर अटूट व शाश्वत सम्बन्ध होता है। इसके अंतर्गत समाज में प्रचलित सभी कुछ आ जाता है। अतः यह एक व्यापक शब्द है। समाज में इसकी अपनी ही महत्ता है। मन्नू भण्डारी ने अपने कथा-साहित्य में सांस्कृतिक मूल्यों को भी अभिव्यक्ति दी है। इसके अंतर्गत सदाचार, देशभक्ति, नारी उत्थान, रीति-रिवाज़, रहन-सहन, वेशभूषा, विवाह, करुणा, दया, त्याग, बलिदान, स्वतन्त्रता तथा कलाओं का विवेचन अर्थात् नृत्य, गायन, संगीत, बोली, भाषा आदि का अंकन किया है।

'जीती बाजी की हार' कहानी में लेखिका ने कॉलेज की तीन सहेलियों (मुरला, आशा और नलिनी) का चित्रण किया है, जिन्होंने अपनी अलग दुनिया बना ली है। खाली समय में ये तीनों पाठ्यालय में बैठी रहती हैं या पढ़ी हुई किताबों पर साहित्यिक बहस करती हैं। इन लड़कियों की रुचि पढ़ने-लिखने और बहस करने के अलावा और किसी चीज़ में नहीं रहती है। वे सामान्य लड़कियों की तरह सजने-संवरने में रुचि नहीं रखती हैं। अर्थात् इनकी चर्चा का विषय लेटेस्ट फैशन नहीं होता है। ये सारी विशेषताएँ उनके बिखरे बालों, कपड़ों और सीधे-सादे रहन-सहन से ही दिख पड़ेंगी। सामान्य लड़कियाँ अवकाश के समय में सिलाई, बुनाई, कटाई आदि चीज़ें करती हैं। परंतु ये तीनों सहेलियाँ इन सबसे कोसों दूर रहती हैं। कॉलेज की कुछ लड़कियाँ विवाहित भी हैं, वे हमेशा अपने पति की रुचि-अरुचि की बातों में उलझी रहती हैं। वहीं मुरला, आशा व नलिनी के विचार से शादी एक ऐसा बंधन है जिसने स्त्रियों के जीवन को बांधकर रख दिया है तथा उन्हें विचार और व्यक्तित्व से शून्य बना दिया है। वे पुरुषों की दासता से दूर रहना चाहती हैं व नारी की स्वतन्त्रता की पक्षधर हैं।

गर्मी की छुट्टियों में ये तीनों घूमने चली जाती हैं और जब लौटकर वापस आती हैं तो नलिनी कुछ बदली हुई नज़र आती है। उसमें आए बदलाव का चित्रण लेखिका इस प्रकार से करती हैं-"बात करते-करते वह शून्य की ओर देखने लगती है तो देखते ही रहती है। अगर किताब खोलकर बैठती है तो बैठी ही रहती है। एक घंटे बाद भी जाकर देखो तो उसकी पृष्ठ संख्या नहीं बदलती। पढ़ने में उसकी तबीयत ही नहीं लगती, मन बस उचटा-उचटा रहता है।"[4] अंततः एक दिन पता चलता है कि नलिनी जल्द ही परिणय सूत्र में बंधनेवाली है। नलिनी जब अपनी सहेलियों से अपने विवाह की बात बताती है तो उसमें उत्साह की

जगह विवशता अधिक प्रकट होती है। वह कहती है कि घर का वातवरण इस प्रकार का है कि वह शादी से बच नहीं सकती, न चाहते हुए भी कभी-न-कभी उसे शादी करनी ही पड़ेगी। इसीलिए जब उसे अपने अनुरूप पात्र नज़र आया तो उसने विवाह के लिए सहमति प्रकट कर दी। नलिनी को अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़कर गृहस्थी बसानी पड़ती है। मुरला को नलिनी की विवशता के कारण विवाह कर लेना पसंद नहीं आती है। उसका मानना है कि इच्छा न होने पर भी विवाह के लिए मान जाना सही नहीं है। यह केवल एक थोथी परंपरा है जिसने महिलाओं के मन-मस्तिष्क को जकड़े रखा है। वह कहती है- "वातावरण क्या ख़ाक करेगा, अपनी इच्छा न हो तो घर का वातावरण क्या, वह तो पूरी दुनिया बदल दे।"[5]

कुछ वर्षों के पश्चात् नलिनी अपनी पाँच महीने की कन्या के साथ जब मुरला और आशा से मिलती है तो वे दोनों उसे देखकर अचंभित रह जाती हैं। हर दम किताबों से घिरी हुई नलिनी अब सजी-सँवरी गुड़िया की तरह लग रही है। उसके मुख से अपने पति व बेटी की प्रशंसा के अलावा और कुछ नहीं निकलता। वह बताती है कि उसका पूरा समय घर संभालने, बच्ची की देखभाल करने व क्लब जाने में ही निकल जाता है। वह अब पढ़ाई के साथ-साथ सिलाई-बुनाई भी करना जानती है। नलिनी से घर-गृहस्थी की बातें सुनकर आशा और मुरला उकताहट भरे स्वर में उसे अपने घर आने का निमंत्रण देकर चल देती हैं। बाहर निकलकर आशा कहती है- "मेरा घर, मेरा पति, मेरी बच्ची! मानो इसके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं दुनिया में। उस पाँच महीने के मांस के लोथड़े में उसे जाने कहाँ की समझ और होशियारी दिख रही थी। बुरी तरह बोर कर दिया।"[6] नलिनी में आए परिवर्तन को देखकर आशा और मुरला अचंभित रह जाती हैं। वे सोचती हैं कि-"नलिनी जैसी लड़की भी इस तरह बदल सकती है, पुस्तकों से नाता तोड़ परिवार की सीमा में बंध सकती है।"[7] वे यह सोचने पर मज़बूर हो जाती हैं कि आखिर विवाह और संतान उत्पत्ति भी इतनी खुशी दे सकती है, जिससे कोई स्त्री अपने अस्तित्व, अपने सपने को भुला दे और पूरी तरह से परिवार के प्रति समर्पित हो जाए।

परास्नातक का प्रथम वर्ष समाप्त करने के उपरांत आशा व मुरला जी जान से पढ़ाई में लग जाती हैं। उनका उद्देश्य होता है कि वे विश्वविद्यालय का प्रथम व द्वितीय स्थान हाथ से जाने नहीं देंगी। लेकिन उसी बीच दीवाली की छुट्टियों में आशा को अपने मामा के घर जाना पड़ता है और वहीं उसकी मुलाक़ात एक कवि महाशय से होती है। उस कवि से मिलने के बाद आशा को ऐसा लगता है कि उसकी बातों व व्यक्तित्व में पुस्तकों की अपेक्षा अधिक आकर्षण है। वह चाहकर भी कवि मित्र के सामने अस्त-व्यस्त कपड़ों अथवा बिखरे बालों में नहीं आती है। आशा के मामा उसमें आए बदलाव को देखकर उसका विवाह उस कवि से कर देते हैं।

मुरला के जीवन में ऐसा कोई बदलाव नहीं आता है। उसका पूरा समय घर, विश्वविद्यालय और पाठ्यालय में ही बीतता है। वह अपने जीवन में बिलकुल संतुष्ट दिखती है। स्नातकोत्तर की परीक्षा में वह सभी विश्वविद्यालयों में प्रथम स्थान प्राप्त करती है। अखबार में उसका नाम आता है, वह पूरे शहर में मशहूर हो जाती है। उसकी इस प्रसिद्धि के कारण जब कुछ युवक उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखते हैं तो वह साफ इनकार कर देती है। वह विवाह को ऐसा बंधन समझती है, जो उसकी उन्नति में अवरोधक की भूमिका निभाएगा।

अपनी सफलता से प्रोत्साहित होकर मुरला ने विश्वविद्यालय में शोधकार्य आरंभ कर दिया। उसका सारा वक़्त विश्वविद्यालय में ही बीतता था। एक दिन जब वह हाथों में पुस्तकें संभाले पाठ्यालय से घर जा रही थी तो रास्ते में उसे आशा का भाई मिला। उसने बताया कि आशा के लड़का हुआ है और वह सामनेवाले अस्पताल में है। यह सुनकर मुरला सीधे उससे मिलने चली जाती है। मुरला के हाथों में किताबों का ढेर देख आशा खेद प्रकट करती है कि उसका पढ़ना-लिखना तो लगभग छूट ही गया है। उसके बाद अपने पति व बच्चे की तारीफ़ों के पुल बाँधने लगती है और अंत में आशा मुरला से पूछती है कि तुम कब शादी करोगी? इसका जवाब मुरला कुछ इस प्रकार से देती है-"वह सब तुम लोगों को ही मुबारक हो। शादी करके मैं अपने व्यक्तित्व को नहीं बेच सकती।"[8] विवाह के सम्बन्ध में मुरला के विचार सुनकर आशा कहती है कि "एक समय मैं भी यही

सोचती थी, पर अब नहीं। यदि तू शादी को व्यक्तित्व बेचना ही समझती है तो इतना मैं अवश्य कहूँगी कि जिस कीमत पर हम व्यक्तित्व बेचते हैं वह इतनी अवश्य होती है कि सौदा घाटे का नहीं रहता। फिर बच्चे ! अब सोचती हूँ, शायद बच्चों के बिना जीवन अधूरा ही रहता है !"[9] यह सब सुनने के बावजूद जब विवाह के प्रति मुरला की धारणा नहीं बदलती तो आशा उससे शर्त लगा लेती है कि शादी तो तुम करोगी ही। मुरला जब चुनौती स्वीकार कर लेती है तो आशा कहती है- "मुरला हो चाहे कोई, इतना जानती हूँ कि जिससे शर्त लगा रही हूँ वह सबकुछ होकर भी नारी है। और नारी को एक साथी चाहिए, परिवार चाहिए और चाहिए बच्चे। उच्च-से-उच्च शिक्षा भी उसकी इस भावना को नहीं कुचल सकती।"[10] मुरला नहीं समझ पाती है कि नर-नारी के मिलन से ही सृष्टि की रचना होती है व परिवार रूपी संस्था का विकास होता है। विवाह के महत्त्व पर बल देते हुए अमृतलाल नगर ने 'मानस का हंस' उपन्यास में लिखा है- "नर-नारी एक दूसरे के पूरक और भाग्यविधाता हैं, वे परस्पर की रीझ और खीझ में अपने-अपने अभावों और उनकी पूर्ति के लिए ही पूर्व कर्मानुसार मिलते हैं।"[11]

मुरला स्वावलम्बी, मुक्तिकांक्षी व स्वतंत्र रहना चाहती है। उसका मानना है कि विवाह करने का अर्थ है अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को बेचना। उसकी यह धारणा बन चुकी है कि अविवाहित रहकर ही उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो सकता है। वह विवाह को पितृसत्तात्मक व्यवस्था के रूप में देखती है, जो स्त्रियों से उनकी शक्ति को छीन लेता है। मुरला आजीवन अविवाहित रहती है व उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात शिक्षा विभाग में उच्च पद पर प्रतिष्ठित हो जाती है। वह आजीवन अविवाहित रहने की बाजी आशा से जीत जाती है। परिणामस्वरूप वह हारी हुई आशा से शर्त के अनुसार उसकी पाँच वर्षीय बेटी को माँग लेती है।'जीती बाजी की हार' कहानी के जिस आत्मकथन के साथ कहानी अपने लक्ष्य तक पहुँचती है, उस पर दृष्टि जानी चाहिए- "मुरला ने पास बैठी हुई आशा की सबसे छोटी लड़की को पास खींचकर प्यार करते हुए कहा- तो अपनी यह बिटिया मुझे दे दे।"[12] बच्चे को करियर में ब्रेक की तरह देखनेवाली मुरला भी अपने अंदर की स्त्री से हार जाती है। इन सबका एकमात्र कारण उसके भीतर का मातृत्व भाव ही है, जिसके कारण वह जीतकर भी हार जाती है। वह जिस परिवार रूपी संस्था से जीवन भर बचकर रहना चाहती थी, अंत में आशा की बेटी से मिलने के पश्चात् उसके विचार में परिवर्तन देखने को मिलता है।अमृतलाल नगर द्वारा रचित 'मानस का हंस' उपन्यास में भी विवाह के प्रति मनोभावों में परिवर्तन देखने को मिलता है उदाहरण के लिए रत्नावली कहती हैं- "विवाह के पहले सोचती थी कि पति डाकू होता है जो कन्या को उसके माँ-बाप से छीनकर पराए घर की बंदिनी बना देता है और अब लगता है कि एक नारी की सर्वश्रेष्ठ आकांक्षा यही होती है।"[13] उसके मन में बच्ची के प्रति वात्सल्य का भाव उपजता है, जो हमारी संस्कृति का प्रमुख सांस्कृतिक मूल्य है। वात्सल्य अथवा ममता ऐसा भाव है जिसमें पड़कर व्यक्ति अपने दुख भूल जाता है। मुरला जिसे परिवार, विवाह, प्रेम आदि चीज़ें अनावश्यक लगती थीं, उसमें भी स्नेह का भाव पल्लवित हो जाता है। वात्सल्य अथवा ममत्व एकमात्र ऐसा मूल्य है जिसके कारण भारतीय संस्कृति सभी संस्कृतियों से भिन्न है। यह मूल्य मन्नू भण्डारी की इस कहानी में भी उद्घाटित हुआ है।

निष्कर्ष : मन्नू भण्डारी की कहानी 'जीती बाजी की हार' एक समसामयिक रचना है। लेखिका ने इस कहानी के माध्यम से वर्तमान की उस समस्या को चित्रित किया है जिसमें युवतियाँ अपने करियर निर्माण की होड़ में इस प्रकार से लगी हुई हैं कि उन्हें अपने सामाजिक दायित्वों का भी बोध नहीं रह गया है। परिणामतः उनके जीवन में विवाह का स्थान गौण होता है और उनका एकमात्र लक्ष्य शिक्षा प्राप्त कर अच्छी-से-अच्छी नौकरी पाना है। निष्कर्षतः वे पद-प्रतिष्ठा रूपी उपलब्धता को ही जीवन की सार्थकता मान लेती हैं। वे विवाह को बंधन-स्वरूप मानती हैं, जिसमें बंधने के उपरांत स्त्री उसमें इतनी उलझ जाती है कि 'स्व' को भी भूल जाती है। उनका मानना है कि विवाह जैसी संस्था महिलाओं की स्वतन्त्रता में बाधक सिद्ध होती है व स्त्रियों को पुरुषों की दासता करने के लिए मज़बूर करती है। उनका मानना है कि पुरुष अथवा पति उनके विकास में अवरोधक की भूमिका ही निभाता है। किसी एक धारणा से चिपके रहना वैसा

ही है जिस प्रकार बंदरिया अपने मृत बच्चे को तब तक सटाये रखती है जब तक कि वह सड़-गलकर गिर न जाए। इन सबके बावजूद अगर हमें समाज को आगे बढ़ाना है तो सामाजिक मान्यताओं को स्वीकार कर उनका पालन भी करना होगा, इसी पर समाज का अस्तित्व टिका है। समाज के प्रति ज़िम्मेदारी पुरुष व स्त्री दोनों पर होती है।

अंततः मुरला को भी अकेलापन का एहसास हो जाता है व पारिवारिक संस्था के प्रति उसके नकारात्मक विचारों में भी परिवर्तन देखने को मिलता है। उदाहरणस्वरूप मुरला, जोकि बच्चे को उन्नति में बाधक समझती थी वही आशा से उसकी पाँच वर्षीय पुत्री को माँग लेती है। परिवार, बच्चे, ज़िम्मेदारियों आदि के बीच भी स्त्री अपने अस्तित्व को बचाए रख सकती है और साथ ही परिवार और समाज का विकास भी।

संदर्भ:

1. शर्मा अरुण, डॉ.योगेन्द्रनाथ, संस्करण 2017, कथाकार 'निशंक' के उपन्यासों में जीवन मूल्य, डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि., नई दिल्ली। पृ. 29
2. सिंह, डॉ. मार्तंड, संस्करण 2021, आधुनिक कथा साहित्य में मानव मूल्य, अकादमिक बुक्स इंडिया, नई दिल्ली। पृ. 34
3. मेघ, डॉ.रमेश कुंतल, संस्करण 2008, मूल्य और मूल्यांकन, सौन्दर्य नेशनल पुब्लिसिंग हॉउस, नई दिल्ली, पृ.09
4. भंडारी, मन्नू, संस्करण 2022 , मैं हार गयी, राधाकृष पेपर बुक्स, नयी दिल्ली, पृ.38
5. वही, पृ.39
6. वही, पृ.40
7. वही, पृ.40
8. वही, पृ.43
9. वही, पृ.43
10. वही, पृ.44
11. नागर, अमृतलाल, संस्करण 2018, मानस का हंस, राजपाल एंड सन्ज़, नयी दिल्ली, पृ.224.
12. वही, पृ.45
13. वही, पृ.232

◆शोधार्थी, हिन्दी विभाग
रमादेवी महिला विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर, ओडिशा।
फोन- 7439481553
ई.मेल :nigdhasingh099@gmail.com

भूमंडलीकरण और 21वीं सदी के हिंदी उपन्यास (स्त्री-लेखन के विशेष सन्दर्भ में)

◆नेहा साव

शोध सार: भूमंडलीकरण की पृष्ठभूमि गहन एवं विस्तृत रही है। यह एक वैश्विक व्यवस्था है, जिसके मूल में अर्थ, राजनीति और संस्कृति हैं। भूमंडलीकरण ने जीवन जगत के हर क्षेत्र, हर पहलू को गहराई से प्रभावित किया है। इस व्यवस्था ने संपूर्ण विश्व की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परंपरा में उथल-पुथल मचाया है।भूमंडलीकरण के कारण नैतिक मूल्य, मानवीय संवेदना तथा सामाजिक विश्वास के स्थान पर बाज़ारवादी मूल्य, भोगवादी संस्कृति और वर्चस्ववाद का प्रभाव बढ़ा है। इसके संचालन के पीछे नवउदारवादी शक्तियाँ कारगर हैं एवं इसका प्रत्यक्ष प्रभाव 21वीं सदी के साहित्य और संस्कृति पर भी पड़ा है। इन्हीं विचारधाराओं और मूल्यों पर विशेष बल देते हुए भूमंडलीय प्रवृत्ति से युक्त 21वीं सदी की लेखिकाओं ने अपने लेखन में दीर्घकालिक उपेक्षित वर्ग के प्रताड़ित होने के कारणों व निराकरण का साक्ष्य प्रस्तुत किया है।

बीज शब्द: भूमंडलीकरण, उदारीकरण, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, स्त्री सशक्तीकरण, स्त्री लेखन, उपभोक्तावादी संस्कृति।

भारत में वैश्वीकरण की प्रक्रिया सन् 1980 के दशक में उदारीकरण की प्रक्रिया के साथ शुरू हुई। किंतु

इसमें तीव्रता सन् 1991में आर्थिक सुधार की प्रक्रियाओं को अपनाने के साथ आई। भारत द्वारा 'विश्व व्यापार संगठन' की सदस्यता स्वीकार करने के उपरांत भारतीय अर्थव्यवस्था का वैश्वीकरण सुनिश्चित हो गया। इसके साथ ही विदेशी पूँजी, विदेशी प्रौद्योगिकी के आयात में पर्याप्त तेज़ी आई तथा इसके साथ भारतीय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का प्रवेश आरंभ हो गया। इन कंपनियों के भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रवेश के साथ ही भोगवादी प्रवृत्ति का चलन प्रारंभ हुआ। खुले बाज़ार की नीति, मुद्रा के द्रुत प्रवाह, इंटरनेट साधन-उपकरण तथा उपभोग करो और फेंको (यूज़ एंड थ्रो) की जीवन पद्धति ने मानवीय मूल्य, पारिवारिक समन्वय और भारतीय संस्कृति के क्षरण की चुनौतीपूर्ण स्थिति पैदा कीं। इस सन्दर्भ में कमल नयन काबरा की उक्ति है—"वास्तव में भूमंडलीकरण से मंशा सारी दुनिया को एक मंडी में तब्दील कर देना है; एक ऐसी दुनिया जो मंडी मात्र ही नहीं है, अपितु उसका संचालन भी मंडी की आतंरिक ताकतों द्वारा सामाजिक, वैश्विक जीवन के हर अन्य पक्ष को गौण और मंडी का पिछलग्गू बनाकर किया जाता है।"[1]अतः हम कह सकते हैं कि 20 वीं सदी के सातवें दशक से लेकर 21वीं सदी के द्वितीय दशक तक भूमंडलीकरण की अनवरत ज़ारी व्यवस्था ने भारतीय संस्कृति, समाज, परिवेश और नैतिक जीवन-शैली में व्यापक परिवर्तन किया है।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण से हर देश व राष्ट्र की विचारधारा भिन्न है। पाश्चात्य संस्कृति में भोग अधिक महत्वपूर्ण है, जबकि भारतीय संस्कृति भौतिकता के स्थान पर आध्यात्मिकता को अधिक प्रश्रय देती है। इतना ही नहीं पूँजी एवं बाजार के जटिल अंतर्संबंधों में मानव इस कदर उलझ गया है कि प्रतिरोध तथा विकल्प की अनवरत तलाश का कोई अंतिम छोर दिखाई नहीं देता है। इन पारिवारिक-सामाजिक विसंगतियों, अंतर्विरोधों, उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों को लेखिकाओं ने अपनी लेखनी में खुली अभिव्यक्ति दी है। इस संदर्भ में सुस्मित सौरभ का कथन है—"इस सदी की महिलाओं ने अपने लेखन में जीवन और समाज के सभी रंगों को अपनी तूलिका रूपी लेखनी से बड़ी भावात्मकता और कलात्मकता से उकेरा है। इनमें कहीं वृद्ध समस्या है तो कहीं नारी मुक्ति की छटपटाहट, कहीं किसी बड़े परिवार की समस्या है, तो कहीं आधुनिक जीवन का खोखलापन।"[2] इस कथन के आलोक में यह कहा जा सकता है लेखिकाओं ने जीवन से जुड़े जाने-अनजाने मुद्दों एवं पहलुओं को विकेंद्रण से केंद्र में लाने की पुरज़ोर कोशिश की है।

हिंदी साहित्य-जगत में लगभग पिछले दो दशकों से भूमंडलीकरण पर चर्चा हो रही है, जिसमें स्त्री-लेखन ने नए ढंग से रोशनी डालने का प्रयास किया है। हिंदी कथा-साहित्य में नई स्त्री-चेतना का उदय वैश्वीकरण से प्रभावित है। 21वीं सदी में नव जीवनाचारों को आधुनिक समाज में स्थान दिया गया। लेखिकाओं ने भूमंडलीकरण और उससे उत्पन्न भोगवादी संस्कृति के सकारात्मक और नकारात्मक पक्षों को बखूबी अपनी कलम से जीवंतता प्रदान की है।वैश्विक और भारतीय परिदृश्य में स्त्रीवाद के उत्थान के साथ ही स्त्री की तेजस्वी कलम ने अपने 'स्व' को पूरी निजता के साथ पद्य एवं गद्य साहित्य में ऊर्जस्वी ढंग से अभिव्यक्ति दी है। इस परिप्रेक्ष्य में पुष्पपाल सिंह की उक्ति उल्लेखनीय है—"स्त्री की पक्षधरता में, महिला सशक्तीकरण की दिशा में यह स्वागत योग्य प्रवृत्ति है कि स्त्री-प्रश्नों पर इतनी सजगता से सोचा गया।...स्त्री-विमर्श सम्बन्धी ग्रन्थों, विशेषतः महिला साहित्यकारों की पुस्तकों को देखकर यह सहज ही स्पष्ट होता है कि 21 वीं शती की कथाकार एक पूरी वैचारिक पृष्ठभूमि और तैयारी के साथ उपन्यास-लेखन में प्रवृत्त हुई हैं।"[3]इस दृष्टि से वर्तमान स्त्री कथाकारों में अलका सरावगी से लेकर ममता कालिया,मैत्रेयी पुष्पा,लता शर्मा,रजनी गुप्त,प्रभा खेतान,मृदुला गर्ग,अनामिका, मधु कांकरिया और आशा प्रभात आदि की रचनाएँ विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं।

अलका सरावगी ने 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास का ताना-बाना समसामयिक कॉरपोरेट जगत की कथावस्तु को आधार बनाकर बुना है।यह महानगरीय जीवन की मानसिकता और धोखाधड़ी को प्रस्तुत करता है।उपन्यास में कॉरपोरेट जगत की

चकाचौंध के बीच देश की एक तिहाई जनता को 'कुत्ते' की तरह ज़िंदगी बिताते हुए दिखाया है, जो देश की सबसे बड़ी विडंबना है। इन कॉरपोरेट नुमाइंदों का मानना है कि अंततः इस विकास का लाभ उस जनता को ही पहुँचेगा। मार्केटिंग के उच्च पद पर आसीन एग्ज़ीक्यूटिव को लेखिका ने प्रमुख चरित्रों के रूप में प्रस्तुत कर उपन्यास की विषय-वस्तु को उपभोक्तावादी व्यवस्था से जोड़ने का प्रयास किया है। के.वी., गुरुचरण उर्फ गुरु और भट्ट ऐसे ही चरित्र हैं, जो भूमंडलीकरण के इस समय में ग्लोबल सपने बेचते हैं। इस संदर्भ में भट्ट का कथन है—"बिज़नेस मैन के पास बड़े से और बड़े होते जाने का ग्लोबल सपना है, दलाल का दूसरों की मेहनत में हिस्सा पाते रहने का सपना है, नेता का स्विस बैंक में अकाउंट खोलने का सपना है, अफसर का घूस की रकम सपरिवार शॉपिंग मॉल में खर्च करने का सपना है। तुम अखबार पढ़ते हो या नहीं? गाँवों के पास सपना है शहर बनने का। शहरों के पास महानगर बनने का। महानगरों के पास मेगापोलिस बनने का।"[4]दरअसल,ये सपने मध्यवर्गीय समाज पर हावी हो रहे हैं और देश की निम्न मध्यमवर्गीय जनता का जीवन इन सपनों को प्राप्त करने की ख़्वाहिशों में समाप्त हो रहा है। 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास कॉरपोरेट जगत के चरित्रों को अत्यंत सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत करता है। साथ ही दाम्पत्य-प्रेम और विवाह संस्था के सत्य को भी उजागर करता है, जिसमें मूल जद्दोजहद स्त्री के सपनों और अभिलाषाओं को विराम लगाना है। लेकिन इसका विरोध कर लेखिका ने स्वच्छंद प्रेम की पैरवी करते हुए परम्परागत वैवाहिक संस्था के लिजलिजेपन की खिल्ली उड़ाई है। उनके अनुसार परिवार रूपी संस्था औरत को उसके अधिकार से वंचित करने के लिए गढ़ी गई है। इस प्रकार यह उपन्यास एक तरफ पाठक के सामने21वीं सदी की स्त्रियों के नवीन कथ्य को सामने लाता है, वहीं दूसरी तरफ बाज़ारवाद की चपेट में फँसे व्यक्ति के वस्तुकरण को भी स्पष्ट करता है।

हिंदी उपन्यासों में'दौड़' ममता कालिया की ऐसी कृति है, जो अपने छोटे कलेवर में हमारे समकक्ष कुछ मज़बूत सवालों और समस्याओं को उपस्थित करताहै। भूमंडलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण ने 21 वीं सदी में युवाओं के सामने सपनों की एक अलग व नितांत नई दुनिया का द्वार खोल दिया है,जिसके परिणामस्वरूप नवीन रोज़गार और नौकरियाँ उपलब्ध हुई हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने रोज़गार के नए अवसर प्रदान करने के साथ-साथ बाज़ार तंत्र और उपभोक्तावादी संस्कृति को जीवन-शैली का हिस्सा बना दिया है। युवाओं ने इस दौर में नए तंत्र पर सवार होकर सफलता तो खूब अर्जित की है, पर मानवीय संबंध और आपसी रिश्ते इनसे कहीं छूटकर बहुत दूर चले गए हैं। पवन, सघन, राकेश, रेखा, स्टेला और अभिषेक वैश्वीकरण के दौर में बहुराष्ट्रीय कंपनियों से जुड़े पात्र हैं, जो सफलता की होड़ में पारिवारिक संबंधों और माता-पिता को अनदेखा करते हैं। इस संबंध में पवन का कथन है—"पापा मेरे लिए शहर महत्वपूर्ण नहीं है, कैरियर है। अब कलकत्ते को ही लीजिए। कहने को महानगर है। पर मार्केटिंग की दृष्टि से एकदम लद्धड़। कलकते में प्रोड्यूसर्स का मार्केट है, कंज़्यूमर्स का नहीं। मैं ऐसे शहर में रहना चाहता हूँ जहाँ कल्चर हो न हो, कंज़्यूमर कल्चर ज़रूर हो। मुझे संस्कृति नहीं उपभोक्ता संस्कृति चाहिए, तभी मैं कामयाब रहूँगा।"[5] यह भोगवादी मानसिकता ऐसी संस्कृति तैयार कर रही है,जो भारतीय संस्कृति के समक्ष एक चुनौती खड़ी कर रही है। आज की युवा पीढ़ी के लिए सही-गलत, नैतिक-अनैतिक, उचित-अनुचित के मानदंड इस उपभोक्तावादी संस्कृति एवं ग्लैमर की दुनिया में मूल्यहीन नज़र आ रहे हैं।

वर्तमान स्त्री के कटु यथार्थ की मार्मिक साहित्यिक प्रतिक्रिया के रूप में लता शर्मा के उपन्यास 'सही नाप के जूते' को देखा जा सकता है। भूमंडलीकरण के दौर में हर वस्तु बिकाऊ है, जहाँ स्त्री भी एक कमोडिटी बन गई है। आज का बाज़ार पूर्णत: मुक्त है, जहाँ किसी वस्तु को बेचने हेतु लोग किसी भी स्तर तक गिरने को तैयार हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति

ने एक तरफ मनुष्य की महत्वाकांक्षाओं को बढ़ा दिया है वहीं सौंदर्य और सफलता के सबसे ऊँचे पायदान पर पहुँचने की होड़ में स्त्री इस मुक्त बाज़ार में खुद को बेचने के लिए भी मज़बूर हो रही है। उपन्यास के फ्लैप पर उद्धृत ये पंक्तियाँ महत्वपूर्ण हैं- "बाज़ार देखते-देखते, बाज़ार हो जाने की यह गाथा सिर्फ मनोरंजन भर नहीं है। लता शर्मा का स्त्री-विमर्शकार यहाँ कथाकार में बखूबी प्रवेश करता है। बताता है कि अस्सी प्रतिशत लाभांश पाने की महत्त्वाकांक्षा का अर्थ क्या है, यदि विवेक को ताक पर रख दिया जाए।...रोशनी की रंगीन चमक में चहकते चेहरे की दास्तान भर नहीं है यह, यहाँ अकेली उदासी में टूटती साँसों की गमजदा आवाज़ भी सुनी जा सकती है।"[6] अतः स्त्री सौंदर्य तथा शोषण के बिसात पर रचित यह उपन्यास उर्मी नामक एक लड़की की है, जिसे उसकी माँ अपनी उच्च महत्वाकांक्षा की मोहान्धता में उर्वशी बना डालती है। इस उपन्यास में लेखिका ने सौन्दर्य व्यापार, ब्यूटी कल्चर एवं स्त्री देह से महत्वाकांक्षा पूर्ति जैसी चिंताओं को सामने रखने का उपक्रम किया है। दरअसल, वैश्वीकरण के दौर में स्त्री मुक्ति के सवाल पर 'अर्लि सक्सेस' का प्रलोभन बाज़ार में फैले वर्चुअल और आभासी जीवन का छद्म उजागर करता है।

21वीं सदी के साहित्यकारों में मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'फरिश्ते निकले' उनकी सृजनात्मकता के प्रौढ़तम रूप से साक्षात्कार कराती है। उपन्यास का फलक स्त्री की देह और मन रूपी देहरी को लाँघते हुए समाज के उन तमाम संस्कारों तक विस्तृत है, जहाँ स्त्री-शोषण के साथ-साथ समाज की गलीज व्यवस्था में जीने को बाध्य डाकू, खानाबदोश जनजाति और किसानों के शोषण की बदलती मुहिम तक अपनी आशियाँ फैलाता है। इसके कलेवर में स्त्री संघर्ष के साथ-साथ वर्तमान समय में पूँजीवादी व्यवस्था में बिचौलियों और दलालों का आर्थिक रूप से तंग लोगों को लूटने का नया स्कीम देखने को मिलता है। आज शहर में इन बिचौलियों और दलालों का उफान आया है, जो रामरतन जैसे न जाने कितने ही बेबस लोगों का लाभ उठाने से बाज नहीं आता। उनके लिए इंसान-इंसानियत-ईमानदारी और सहानुभूति से बढ़कर है- मुनाफा । आज शहरी सभ्यता के अंतर्गत मॉल, होटल और रेस्तरां की लाइन लगी है, जो ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए भारतीय संस्कृति और परंपरा को नुमाइश का बड़ा हथियार बना रहे हैं। शहरी औद्योगीकरण एवं उसकी आबोहवा का प्रभाव शहरी जीवन तक सीमित नहीं रहा, बल्कि गाँव में भी यह विष के समान तीव्र गति से फैलने लगा है, जिसके कारण खेती के अटूट हथियार हल-फावड़े की जगह ट्रैक्टरों ने ले लिया। मृणाल पांडे ने 'स्त्री और सदी का अवसान' नामक आलेख में अपने विचारों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—"ज्यों-ज्यों उद्योग जगत में पढ़े-लिखे हुनरमंदों का कब्जा और कंप्यूटरीकृत ज्ञान का संरक्षण बढ़ा है... इस बात के भी ठोस प्रमाण हैं कि कृषि तकनीकी प्रधान होती गई है, बुनकरी तथा निर्माण कार्यों में भी पारंपरिक किस्म के हस्तलाघव की ज़रूरतें घटी हैं और मशीनों का महत्व बढ़ाहै।"[7] यह उपन्यास भूमंडलीकरण के दौर में उन समस्याओं को आलोकित करता है, जिससे भारत की अधिकांश आबादी, किसान, मज़दूर और स्त्रियाँ ताल्लुक रखती हैं।

21वीं सदी की प्रमुख स्त्री उपन्यासकारों में आशा प्रभात एक महत्वपूर्ण एवं बहुमुखी प्रतिभा संपन्न रचनाकारों में से एक हैं। वर्तमान परिदृश्य में यदि आशा जी के लेखन जगत को खंगाला जाए तो स्पष्ट होता है कि उनके पास सामाजिक विसंगतियों को तोड़ने तथा यथार्थ को गहराई से आकार देने की क्षमता है।अभिव्यक्ति की इस महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में आशा प्रभात द्वारा रचित आत्मकथात्मक उपन्यास 'मैं जनक नंदिनी' को देखा जा सकता है।यह उपन्यास जनक नंदिनी सीता को आधुनिक स्त्रियों के लिए नए आदर्श के साथ प्रस्तुत करता है, जो केवल कर्तव्य, त्याग और समर्पण का संदेश न देकर अपने चरित्र पर लांछन लगानेवाले पति राम के परित्याग का माद्दा रखता है। पौराणिक युग से लेकर 21वीं सदी तक सीता का चरित्र भारतीय स्त्रियों के लिए अनुकरणीय रहा है, किन्तु लेखिका ने वर्तमान दौर में अनुकरण के नज़रिए में अंतर लाने का प्रयत्न किया है। आशा प्रभात के शब्दों में—"क्या सीता के पास अपने प्रति

किये जा रहे अविचार के प्रति प्रतिरोध के स्वर का अभाव था? अपने जीवन-जनित अभीष्ट अपने कर्मों में निहित कर जीती सीता क्या मात्र पाषाण प्रतिमा थीं?...क्या हर स्थिति-परिस्थिति को उन्होंने सहज स्वीकार लिया था, शिरोधार्य कर लिया था बिना प्रतिवाद किये? ऐसे अनेक प्रश्न सदियों से प्रबुद्ध जन मानस में उद्वेलित हैं।"[8] सीता के जीवन-चरित्र के स्याह पड़े इस पक्ष पर लेखिका रोशनी बिखेरते हुए स्वावलंबी और आत्मसम्मान पूर्ण जीवन जीने के लिए उनके चरित्र को अनुकरणीय बनाती है, जो 21वीं सदी के इस वैश्विक युग में अतिआवश्यक है। बहरहाल, इस उपन्यास की कथावस्तु परंपरागत होते हुए भी वैचारिक धरातल पर आधुनिकता से लैस है।अतः आशा प्रभात की कृति 'पौराणिक स्त्रियों के समाज' को नहीं अपितु 'आधुनिक समाज में पौराणिक स्त्रियों' की अलौकिक प्रस्तुति है। इस तरह उपन्यासकार ने 21वीं सदी में मिथकीय पात्र सीता के चरित्र को नए दृष्टिकोण से देखने का आग्रह किया है।

उपरोक्त आलोचना के आधार पर कहा जा सकता है कि बाज़ारवाद ने नई पीढ़ी को नई परवरिश दी है। पूँजीवाद की ओर अग्रसर होते हुए तीसरी दुनिया के देशों में स्त्री की जो पहचान उभरती है, वह पश्चिमी नकल भर नहीं है। निश्चित ही अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में स्त्रियों की भागीदारी बढ़ी है। आधुनिक युग में हिस्सेदारी कर रही स्त्री को एक सीमा तक अपना आलोचनात्मक रवैया बनाने में सफलता मिली है। इस ड्रोन-युग और हाई-टेक की संस्कृति में जी रही नई पीढ़ी की आँखें आसमान पर टिकी हैं। हैरी पॉटर और साइंस एनसाइक्लोपीडिया पढ़कर नई पीढ़ी बुद्धिजीवी हो रही है। उपभोक्तावादी समाज और भौतिकवादी प्रवृत्ति ने साहित्य जगत में लेखन की परंपरा, वैचारिकता पर तर्क, विज्ञान, उपभोग और पूँजी की छाप को उजागर किया है। यह भूमंडलीकरण का प्रभाव है कि आधुनिक नस्लें किसी 'टैलेंट सर्च परीक्षा' की तैयारी में तल्लीन, पिकनिक-पार्टी में मशगूल, पिज़्ज़ा-बर्गर और कोकोकोला का लुफ्त उठाते हुए एक यंत्र चालित जीवन जी रहे हैं, जहाँ धीरे-धीरे हम एक रोबोटिक पीढ़ी को बढ़ावा दे रहे हैं। इस संक्रमण कालीन युग में 21वीं सदी के स्त्री साहित्यकारों ने आधुनिक जीवन-शैली की चुनौतियों को स्वीकार करते हुए स्त्री मुक्ति के बहुआयामी पक्षों एवं प्रश्नों को गहराई से अपने लेखन में तरजीह दी है।

सन्दर्भ सूची :

1. काबरा, कमल नयन; भूमंडलीकरण विचार, नीतियाँ और विकल्प; प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण 2005, पृ. 18.
2. https://www.apnimaati.com/2016/11/blog-post_54.html?m=1
3. सिंह, पुष्पपाल, 21वीं शती का हिन्दी उपन्यास; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली,संस्करण 2015, पृ. 162-163.
4. सरावगी, अलका; एक ब्रेक के बाद; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,संस्करण 2010,पृ. 214.
5. कालिया, ममता; दौड़; वाणी प्रकाशन, दिल्ली; संस्करण 2000, पृ. 66.
6. https://pustak.org/index.php/books/bookdetails/7938/Sahi-Nap-Ke-Jute
7. पांडे, मृणाल, 'स्त्री और सदी का अवसान', अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य, राजेंद्र यादव, अर्चना वर्मा (सं.), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2001, पृ. 279.
8. प्रभात, आशा, मैं जनक नंदिनी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,संस्करण 2017, पृ. 9.

◆ शोधार्थी , पी एच. डी (हिन्दी विभाग)
काज़ी नज़रुल विश्वविद्यालय
आसनसोल (पश्चिम बंगाल)।
ईमेल-:nehashaw468@gmail.com
मो ..8646843757

आर्थिक संकट की त्रासदी की कसौटी पर चित्रा मुदगल की कहानी 'भूख'

◆डॉ. सौम्या सी.एस.

आर्थिक संकट या financial crisis आज पूरे विश्व में एक बहुचर्चित मुद्दा है। यह एक ऐसी जटिल समस्या है जो बड़ी तेज़ी से पूरे विश्व की आबादी को बरबादी के कगार पर ला खडा कर रही है। आर्थिक संकट एक ऐसा नासूर है जो मज़बूत से भी मज़बूत देश की नींव हिलाकर रख देता है। समय रहते अगर इस समस्या का उचित हल नहीं निकाला गया तो यह पूरी मानव राशि की अस्मिता को खतरे में डाल सकती है। भारत गरीबों और गरीबी का घर है। यहाँ की आधी से ज़्यादा आबादी फुटपाथ के आसरे अपना जीवन गुज़र कर रही है। भारत एक प्रगतिशील देश है जहाँ गरीबी एवं आर्थिक संकट विकास के पथ में अवरोध उत्पन्न करने वाले तत्व हैं। हमारे देश में विनियोजित अर्थ व्यवस्था -द्वारा गरीबी और भुखमरी को दूर करने के नितांत प्रयास निरंतर किए जा रहे हैं। फिर भी संपूर्ण रूप से छुटकारा पाना संभव नहीं हो पाया है। अनगिनत योजनाओं का आरम्भ होने से आज विभिन्न क्षेत्रों ने पर्याप्त प्रगति की है। परन्तु इस प्रगति का लाभ गरीबों और मध्यवर्ग के लोगों को जितना अधिक होना चाहिए उतना कम हुआ है। परिणामस्वरूप देश का धनी वर्ग और धनी होता गया, गरीब और भी गरीब होता गया। सन् साठ के साहित्य में भारत की बदलती दिशा और दशा को पूरे यथार्थबोध के साथ प्रस्तुत किया गया है। समकालीन लेखिकाओं की श्रेणी में चित्रा मुद्गल की लेखीय संवेदना विशेष उल्लेखनीय है। उनकी कहानियों में महानगरों में नरक सदृश्य जीवन-यापन करनेवाले निम्न स्तर के लोगों की त्रासद स्थिति का नग्न चित्रण है। भूख' कहानी संकलन की भूख', चेहरे' तथा 'फातिमाबाई कोठे पर ही नहीं रहती' शीर्षक कहानियों में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से आर्थिक संकट की त्रासदी के खण्ड एवं अखण्ड चित्र सुलभ हैं। 'भूख' हर इनसान की हिम्मत और कमज़ोरी का दूसरा नाम है। यह हमें ऊर्जा की भरमार भी देती है तथा एक बलवान व्यक्ति को क्षीण एवं निर्दय बनाने में भी कुशल है। इनसान की आर्थिक परिस्थिति के अनुरूप उसकी भूख के मायने भी अलग होते हैं।

'भूख' कहानी की लक्ष्मा को निर्दय मानवीय प्रतिमा के प्रतिरूप में अंकित किया गया है। लक्ष्मा निर्दय क्यों और कैसे हुई, यही इस कहानी के आर्थिक संकट की त्रासदी को उभारता है। 'भूख' के भीषण प्रहार से त्रस्त लक्ष्मा के करुण जीवन का मार्मिक चित्रण किया गया है। इस मर्मस्पर्शी कहानी के कण-कण में चित्राजी ने आर्थिक संकट की त्रासदी को दर्शाया है। लक्ष्मा के परिवार की पतनोन्मुख अवस्था का मूल कारण उसकी आर्थिक अक्षमता ही है। उसके जीवन की बदसूखी गरीबी के कारण है।

मुम्बई एक महानगर है जहाँ लाखों की आबादी है। इस आबादी का एक हिस्सा जहाँ आर्थिक रूप से सुरक्षित है वहीं अधिकांश भाग आर्थिक संकट से पीड़ित हैं। आए दिन काम और बेहत्तर ज़िन्दगी की तलाश में अनेकों लोग अन्य गाँवों और कस्बों से मुम्बई की ओर रवाना हो रहे हैं। इनमें से कुछ अपनी मंज़िल ढूँढ निकालते हैं तो कुछ मुम्बई की माया में फँसकर अपना अस्तित्व ही खो देते हैं।

लक्ष्मा और उसके बच्चे मुम्बई के एक अन्दरूनी इलाके की एक खोली में अपना बसर करते हैं। पति की आक्समिक मौत से बेसहारा लक्ष्मा के परिवार का पूरा दायित्व अबला लक्ष्मा के कंधो पर आ गया। उसने कई ठेकेदारों, दुकानदारों से काम की भीख माँगी, लेकिन किसीने उसकी सहायता नहीं की। परिणामस्वरूप घर की आर्थिक स्थिति दिन-ब-दिन गिरती गई। लक्ष्मा के पास राशन कार्ड तक नहीं था इसलिए वह बच्चों को

ज्वार की रोटी और सूप खिलाती है। लक्ष्मा की हितैषी और शुभचिंतक पडोसन सावित्री अक्का के सुझाव के अनुसार वह फ्लैटवालों के यहाँ काम की तलाश में निकली। लेकिन मदद की जगह उन्होंने दरवाज़ा उसके मुँह पर दे मारा, जिसका संकेत लक्ष्मा भली-भाँति समझ गई थी। इस घटना से ही आर्थिक ऊँच-नीच की प्रवृत्ति की स्पष्ट झलक चित्राजी ने दर्शायी है। संसार की अर्थ-व्यवस्था की यही विडम्बना है कि यहाँ धनिक गरीब की मदद और उसपर उपकार करने से कतराते हैं।

लक्ष्मा के जीवन का ऐसा कोई दिन नहीं है जब वह किसी दुकानदार या ठेकेदार के आगे काम की भीख माँगने न गई हो। लक्ष्मा हर तरह के श्रम के लिए कमर कसकर तैयार खडी थी जिसके बलबूते पर वह अपने बच्चों का पेट भर सके। उसका पति जिस ठेकेदार का मिस्तरी था बहाना बनाकर निकल गया कि काम के वदारु चढाने के कारण ही उसके पति की मौत हुई थी। आज के समाज में भी ऐसी परिस्थितियों का मिलना आम हो गया है। आज भी समाज के उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग के लोगों पर पैसे का रोब चढ़ाते हैं। अपनी बहानेबाज़ी से सामंती जन गरीबों का शोषण कर रहे हैं। लक्ष्मा के पति के खडूस ठेकेदार ने अनगिनत बहानों की आड में हज़ार रुपए हर्ज़ाना देकर लक्ष्मा के परिवार से अपना पीछा छुडा लिया। लक्ष्मा की तरफ से कई लोगों ने ठेकेदार से लक्ष्मा को काम पर रखने की बिनती और सिफारिश की लेकिन उसका जवाब ये था कि "इसका पेट फूला है, बैठ के मजूरी लेगी।"[1] लक्ष्मा का सातवाँ महीना चढा था और अपनी इस हालत में भी वह निरन्तर काम की तलाश में भटकती फिरती थी। इस प्रसंग में चित्राजी पाठकों को आज के समाज के आर्थिक ढाँचे के प्रति अवगत करवाती हैं जहाँ ज़रूरतमंदों को काम की कमी है या कोई चाहकर भी काम नहीं देना चाहता है। हमारे देश में भी ऐसे अनेक घर सुलभ हैं जहाँ गृहनाथ की अप्रत्याशित मौत से पूरा परिवार सर्वनाश की दहलीज़ पर आ जाता है। लक्ष्मा ने अपने परिवार की न्यूनताओं का जमकर सामना करने की पूरी कोशिश तो की थी, लेकिन एक अबला नारी समाज की संघर्षरत परिस्थितियों से एक हद तक ही लड़ सकती है। इस प्रसंग में चित्राजी पाठकों को यह संदेश देना चाहती हैं कि चाहे हम कितने ही अधुनिक का शोर मचा लें औरत को अपनी सीमा में बाँधकर रखने का प्रयास करते हैं।

'भूख' की तपिश की भयावह स्थिति में लक्ष्मा और बच्चे एक एक दिन काटते गए। तीन बच्चों की माँ होने की खामी के कारण उसे काम से हाथ धोना पड़ता था। कुछ निर्दयी लोग उससे काम की सलामती के लिए डिपोज़िट की माँग करते हैं। तो लक्ष्मा का अभिप्राय यह है कि डिपोज़िट के पैसे होते तो वह हथौड़ा खरीदकर गली-गली हाक लगाती घूमती और कुछ पैसा कमाकर अपने बच्चों का पेट भरती। दिन गुज़रते गए और लक्ष्मा के परिवार की आर्थिक स्थिति गिरती गई। लक्ष्मा के परिवार पर न किसीका साया था, न ही सहारा, इसलिए उसके बच्चे बेलगाम घोड़ों की तरह भटकते फिरते हैं। आर्थिक संकट की बढ़ती बदहालीवश लक्ष्मा ने आत्महत्या की भी सोची, लेकिन बच्चों के मासूम चेहरे ने उसे जीने का सहारा दिया। क्षुब्ध मन की हताशा को कभी अपने बच्चों की कोमल देह को मार-पीटकर पूरी करती थी। आर्थिक संकट ऐसी जटिल समस्या है जो हँसते-खेलते परिवार की खुशी को हमेशा छीन ले जाता है। लक्ष्मा को एक अनाज की दुकान से यह कहकर निकाल दिया कि बच्चोंवाली औरत को काम देना व्यापार का नुकसान करना है, क्योंकि पिछली बार जिस औरत को काम पर रखा था वह बड़ी होशियारी से दो-चार किलो अनाज गायब कर लेती थी। यह एक कोरा यथार्थ है कि आज संसार में कई लोग हैं, जिनकी पहली चोरी भूख की तपिश की असह्यता वश की थी तथा ऐसी कई माँ भी है जिन्होंने अपने ब बच्चों के खाली पेटों की खातिर अनाज की चोरी की है। आर्थिक संकट के भयावह परिणाम हैं आज संसार में फैली हुई अराजकता, दहशत, आतंक, चोरी, डकैती आदि। अपनी अर्थ-भद्रता के लिए कई लोगों ने बुरे काले धंधों का मार्ग अपना लिया और अपने जीवन की महिमा को कलंकित कर दिया।

अपनी आर्थिक पराधीनता से विगलित होकर लक्ष्मा अपनी ही आत्मा से प्रश्न करती है "कैसे जिए?

क्या करे? कैसे इन्हें जिलाए?"[2] भूख से रोते-बिलखते अपने बच्चों की दुर्दशा से पीड़ित होकर लक्ष्मा ने अपने गाँव जाने की सोची। लेकिन वह किसी पर भी भार बनना चाहती नहीं थी। इसीलिए उसने मुम्बई में ही रहने का फैसला किया।

अपनी आर्थिक पराधीनता में पिसते-पिसते लक्ष्मा को एक दिन ठेकेदार ने पत्थर कूटने का काम जैसे-वैसे दे दिया। लक्ष्मा के लिए खुशी मनाने का अवसर था। यह काम उसकी अंधेरी ज़िन्दगी में चिराग सरीका था। काम मिलने की खुशी से लक्ष्मा ने बरसों से अपनी खोली में सहेजकर रखे एक रुपए में अपने बच्चों के लिए मिठाई, चाय पत्ति, दूध इत्यादि सामान खरीदे। वह अक्का का स्वागत सत्कार करने की भी इच्छुक थी। लेकिन उसकी यह खुशी अधिक टिक न सकी, क्योंकि जिस औरत की अप्रत्याशित गैर हाज़री में उसे काम मिला था वह औरत काम को लौट आई थी। लक्ष्मा के घर में फिर सन्नाटा छा गया। लक्ष्मा के पास पिछले पल ढेर सारी खुशियाँ, सपने और बेहतर ज़िन्दगी की उम्मीदें थीं लेकिन अगले ही पल उसके पास वही काली, सुन्न और एकाकी रातें ही बच गईं।

सावित्री अक्का लक्ष्मा की आर्थिक पराधीनता से भली-भाँति अवगत थी। हज़ारों रास्ते अपनाने के बावजूद लक्ष्मा को कोई स्थायी काम नहीं मिल सका। इस संक्रांत काल में लक्ष्मा के हित की आकांक्षा करती अक्का ने उसके सामने एक प्रस्ताव रखा, जिसपर मज़बूरीवश अमल करते ही लक्ष्मा मातृत्व पर कलंक मानी गई। अक्का ने उसे सलाह दी कि वह एक ऐसी औरत को जानती है जो छोटे बच्चों को किराए पर लेकर उन्हें भीख माँगने का साधन बनाते हैं तथा बदले में रोज़ की कमाई में से एक हिस्सा बच्चों के परिवार को थमा देती है। पूरे दिन के बच्चे का खान-पान उसकी ज़िम्मेदारी होती है। इस प्रस्ताव को सुनकर लक्ष्मा पहले पहल भभक उठी थी। लेकिन आर्थिक पराधीनता की दलदल में वह इस तरह फँस गई थी कि उसका बचना मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन था। अपने इस निर्णय के स्थापन और स्वीकार्य के लिए लक्ष्मा ने आगे-पीछे की हर बात पर ध्यान दिया और अन्ततः बच्चे को किराए पर देना का निर्दय फैसला लेना पड़ा। लेकिन अपने इस फैसले की बड़ी कीमत उसे चुकानी पड़ी। जल बिन मच्छली की तरह छपटाते छोटु को जब अस्पताल के गंभीर मरीज़ वार्ड में दाखिल किया तो डॉ. साहब ने भर्त्सना भरे स्वर में कहा कि बच्चे की मौत भूख के कारण हुई है। उसकी आँखें भूख से सूखी पड़ गई है। धीरे-धीरे ढहती लक्ष्मा को न कुछ सुनाई दे रहा था, न ही कुछ दिखाई दे रहा था, सिवाय अपने बेटे की नीली पड़ी लाश, दूध की बोतल और बिस्कुट।

आर्थिक संकट की समस्या की जड़ें कितनी गहरी और मज़बूत हो सकती हैं इसका प्रबल प्रमाण है 'भूख' कहानी। आर्थिक पराधीनता ने माँ से अपना बच्चा छीन लिया और वह खुद अपने आप को उसकी हत्यारिन बनकर जीवन ढोने के लिए मज़बूर हो गई।

संदर्भ:

1. भूख, चित्रा मुद्गल, वर्ष 2002, ज्ञानगंगा प्रकाशन, दिल्ली पृ.सं. 23
2. वही, पृ.सं. 15

◆ असिस्टेंट प्रोफ़ेसोर
हिन्दी विभाग
एस एन कॉलेज, आलथूर,पालककाटु, केरल।
ई.मेल : cs.soumya156@gmail.com
मो.: 9562447884

मुद्रकतथा प्रकाशकडॉ.पी.लता, आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफिस लेन, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम -14 द्वारा
अबी प्रकाशनएन्ड प्री-प्रेस, करुमम्, तिरुवनन्तपुरम -2 में मुद्रिततथाडॉ.पी.लताद्वारा संपादित
Printed & Published by Dr.P.Letha, Arathi, T.C. 14/1592, Forest Office Lane, Vazhuthacaud, Thiruvananthapuram -14,
Printed at Abi Design & Pre-Press, Karumom, Thiruvananthapuram -2 & Edited by Dr. P. Letha